प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।





मुद्रक—
मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
नं० ४३४, ठाकुरद्वार, बम्बई।

भूमिका।

स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायका यह लोकप्रिय नाटक विक्रम संवत् १९६२ में लिखा गया था। कविवरने इसे अपने पिता दीवान कार्तिकेयचन्द्रदेवके चरण-कमलोंमें भक्ति-पुष्पाजलिस्वरूप अर्पण किया है और लिखा है कि उन्हींके देव-चरित्रको सम्मुख रखकर दुर्गादास-चरित्र अङ्कित किया गया है।

दुर्गादास नि स्वार्थ प्रभुपरायणता और कर्तव्यनिष्ठताका आदर्श चित्र है। इसकी समालोचना करते हुए श्रीयुक्त प्रफुल्लकुमार सरकार बी. एल ने वंग-दर्शनमें एक जगह लिखा था—"दुर्गादास और शाहजहाँ द्विजेन्द्रलालके कीर्तिस्तम्भ हैं। दुर्गादासमें उन्होंने एक ऐसा चरित्र अङ्कित किया है, जो वगला-साहित्यमें दुर्लभ है।" पर द्विजेन्द्रलालके अन्तरग मित्र स्वर्गीय वैरिस्टर लोकेन पालित आई सी. एस. इसमें एक त्रुटि वतलाते थे। वे 'दुर्गादास'को 'दोष-त्रुटि-हीन सद्गुणावलीकी समष्टि' कहते थे। पर यह त्रुटि--यदि इसे त्रुटि कह सकते हों तो—द्विजेन्द्र वावूने जान-वूझकर की थी—उन्होंने इसे आदर्शचरित्रके रूपमें अङ्कित करना ही अच्छा समझा था। इस नाटकमें दुर्गादास, दिलेरखाँ, कासिम, भीमसिंह, और महामायाके उन्नत चरित्र, श्यामसिंह और संभाजीके निकृष्ट चरित्रोंके पार्श्वमें उज्ज्वलतर होकर चमक उठे हैं।

इस नाटकमें कविने एक जगह दिलेरखाँके मुखसे अरण्य-रोदन कराया है—"मैं चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों, मजहव, कौम और रस्म-रवाजोंके फर्कको भूलकर, घुटने टेककर, हाथ जोडकर, एतकाद और भक्तिके साथ, इस हिन्दुस्तानकी हरीभरी धरतीके जयजयकारसे आसमानको गुँजा देवें।—उनके दिलोंमें यह खयाल पैदा हो कि यह हिन्दुस्तान हमारी मा है और हम हिन्दू-मुसलमान एक माके दो लडके--भाई भाई—हैं।"

और एक जगह—दक्षिणमे सभाजीके किलेमे—दुर्गादाससे कहलाया है—" मराठोंकी जाति लडनेवाली है। इनका घोडा चलाना, युद्ध-कौशल और सहन-शीलता सब अद्भुत है।—इनके साथ यदि राजपूतोंकी एकाग्रता, स्वार्थत्याग और दृढताको भी मिला सकता, तो क्या न हो सकता था! पर नहीं, यह न होगा। भारतका भाग्य अच्छा नहीं है। हिन्दू जाति बिखर गई है, उनका फिर एक होना बहुत कठिन है। "

जिस समय यह नाटक रगभूमि पर खेला गया, उस समय दर्शकोंने द्विजेन्द्र बाबूके जयजयकारसे नाटकगृहको गुँजा दिया और पत्र-सम्पादकोंने जी खोलकर इस नाटककी प्रशसा की। यहा 'नव्य भारत' नामक मासिकपत्रसे दुर्गादासकी समालोचनाके कुछ अश उद्धृत किये जाते हैं —

" * * द्विजेन्द्रलालकी लेखनीने एक स्वर्गीय प्रभासे बंगला-साहित्याकाशको चमका दिया है। वह स्वर्गीय प्रभा 'दुर्गादास' है। * * पुस्तकें देशमे अनेक बनी हैं और आगे भी बनेंगी; * * चाहे जिन पुस्तकोंके विषयमें पूछिए, उनमे अधिकाश पुस्तकें मृत मनुष्योंकी पूतिगन्धमय बातोसे भरी हुई हैं। प्रेमकी कहानियाँ, प्रणयकी गाथायें, शत्रुकी उत्तेजनायें, इस तरह सारा बगलासाहित्य केवल पराधीनता और कापुरुषताके असार चित्रोंसे व्याप्त हो रहा है। इतने दिनोंके बाद द्विजेन्द्रलालके हृदयमेसे स्वर्गीय प्रभा फूट कर बाहर हुई है। द्विजेन्द्रलाल रूसो और वाल्टेयरके समान बगालमे देवत्व और अमरत्व प्राप्त करनेके योग्य हैं।

" कोई पूछेगा कि इस नाटकमे क्या कोई भी दोष नहीं है? 'गाते गाते जिया अजितके गले लग जाती है।' बस, सारी पुस्तकमे यदि कोई दोषकी बात है तो यही है। * * और सर्वत्र ही मार्जित रुचि, विशुद्ध भाव, सुन्दर लेखन-कौशल और असाधारण कवित्व छलक रहा है। पढते समय ऐसा जान पडता है मानों हम कोई धर्मग्रन्थ पढ रहे है, मालूम होता है कि स्वार्थत्यागके मन्त्रका एक सजीव इतिहास पढ रहे हैं, समझ पडता है स्वदेश-भक्तिकी एक उज्ज्वल कहानी बाँच रहे हैं। जिस समय पढकर समाप्त किया, उस समय मुँहसे निकल पडा—कैसी आश्चर्य-कारिणी कहानी पढी, कैसा मधुर चित्र देखा! ऐसा तेज पूर्ण सर्वाङ्गसुन्दर नाटक बंगलाभाषामे अबतक नहीं पढा, नहीं कह सकते कि कभी आगे भी पढेंगे या नहीं। * "

"यह नाटक कवित्व, स्वदेशप्राणता, निःस्वार्थता, पवित्रता, दया और क्षमा आदि सभी गुणोंमें आदर्श है। हमने जो चाहा है इसमें वही पा लिया है। वास्तवमें द्विजेन्द्रलाल इस एक पुस्तकको लिखकर अमर हो गये हैं। "

इसी समय कुछ समालोचनायें ऐसी भी निकली थीं, जिनमें इस नाटकके प्रभावके सम्बन्धमें आक्षेप किये गये थे। एक मुसलमान समालोचकने इस नाटकका अभिनय देखकर लिखा था कि इसमें मुसलमानोंको छोटा करके हिन्दुओंको बडा बनाया है।

इन विरुद्ध समालोचनाओंका उत्तर ग्रन्थकार स्वयं ही इस नाटककी भूमिकामें दे गये हैं, जिनका सारांश नीचे दिया जाता है —

"गतवर्ष हमारे मित्र श्रीयुक्त प्रमथनाथ वन्द्योपाध्यायने हमसे राठौर वीर दुर्गादासके विषयमें नाटक लिखनेका अनुरोध किया। तब हमने राजस्थानमें लिखी हुई दुर्गादासकी जीवनीको फिर पढा। देखा कि दुर्गादासका चरित्र देवदुर्लभ है—स्वर्णपत्र पर अंकित कर रखनेके योग्य है। बस, उसी समय हमने दुर्गादास-चरितको लिख डालनेका संकल्प कर लिया।

"वर्गीय ऐतिहासिक 'ट्रैजिडी' जो कुछ है—उसकी भित्ति विजातियोंके हाथों स्वजातीय वीरकी हार और मृत्युमें है। दुर्गादास उस श्रेणीकी 'ट्रैजेडी नहीं है। दुर्गादास औरंगजेबके साथ प्रत्येक युद्धमें जीते हैं और राणा राजसिंहने तथा उन्होंने सम्राट्को कार्यतः राजस्थानसे शृगालकी नाईं भगाया है। दुर्गादासका 'ट्रैजिडी-त्व' (यदि इसे ट्रैजिडी कहा जाय तो) यवनराजाके हाथों हिन्दूवीरका निग्रह नहीं है। इसी तरह इसका ट्रैजिडीत्व किसी हिंदू राजाके निकट उसके किसी भक्त वीरके निग्रहमें भी नहीं है। क्योंकि अजितसिंहकी अकृतज्ञता दुर्गादासके हृदय पर उतनी गहरी चोट नहीं पहुँचा सकी थी। इसका ट्रैजिडीत्व है चिरजीवनकी उपासनाकी निष्फलतामें, जन्मभरकी साधनाकी असिद्धतामें, और प्राकृतिक नियमके विरुद्ध व्यक्तिगत चेष्टाकी हारमें। इसका ट्रैजिडीत्व इस एक ही बातमें है—"सब चेष्टा व्यर्थ हुई—इस जातिको खींच कर खडा नहीं कर सका।"

"अब तक हिन्दू पाठक नाटक-उपन्यासोंमें (राजसिंहको छोड कर) विजातियोंके द्वारा स्वजातियोंकी केवल पराजय-वार्ता ही पढते आ रहे हैं। इतने दिनोंतककी इस इकंगी पराजयके बाद दुर्गादासकी यह विजयदुन्दुभि क्या

उनके कानोंमें सगीतवर्षण नहीं करेगी ? राजस्थानके इस परिच्छेदमें राजपूतोंकी वीर्यगरिमाका निर्वाणोन्मुख प्रदीपके समान उज्ज्वलतम विकास देख पडता है। राजस्थानके इसी परिच्छेदको लेकर दुर्गादाम रचा गया है। यह नाटक चाहे जैसा हो—पर इसका विषय महत् है। और यही वंगीय पाठकोंके ऊपर हमारे दुर्गादासका प्रधान दावा है।

" मूल घटनाका वृत्तान्त हमने केवल राजस्थानसे ही नहीं लिया है, अर्म्मादिके इतिहाससे भी उपादान सग्रह किये हैं।

" औरगजेवको हमने पिशाचरूप कल्पित नहीं किया है—जैसा कि टाड और अर्म्मने किया है। हमने उसे ' सरल धार्मिक मुसलमान ' के रूपमें खडा किया है। उसके द्वारा जो अत्याचार हुए, वे उसकी अत्यधिक धर्मान्धता और इस्लाम-धर्म-प्रचारके दृढ सकल्पके फलसे हुए। "

हमें यह प्रकट करते हुए प्रसन्नता होती है कि ' दुर्गादास ' का हमारे हिन्दीभाषाभाषी पाठकोंने भी यथेष्ट आदर किया है और इसका स्पष्ट प्रमाण यही है कि केवल दो ही वर्षोंमें इस नाटकके प्रथम सस्करणकी २००० प्रतियाँ खप गई हैं।

इस संस्करणमें यत्र तत्र थोड़ा वहुत परिवर्तन किया गया है। जो भूलें रह गईं थीं, वे ठीक कर दी गई हैं और गीतोंको विलकुल नये सिरेसे वनवा दिया है। पहले संस्करणमें जो गीत थे, वे मूल गीतोंके अनुवाद या भावानुवाद नहीं थे, यहाँ वहाँसे संग्रह किये हुए थे, पर अवकी वार वे मूलगीतोंके भावानुवाद हैं।

आशा है कि पाठक इन परिवर्तनोंको पसन्द करेंगे और इस नाटकको तथा इसके स्वर्गीय भावोंको अधिकाधिक फैलानेका प्रयत्न करेंगे।

अगहन सुदी ६,
वि० स० १९७५।

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी।

नाटकके प्रधान पात्र ।



नट

औरंगजेब	... ...	भारत-सम्राट् ।
राजसिंह	... ...	मेवाड़के राना ।
श्यामसिंह	... ...	बीकानेरके राजा ।
संभाजी	... ...	मराठोंके राजा ।
दुर्गादास	... ...	मारवाड़के सेनापति ।
दिलेरखाँ	... ...	मुगल-सेनापति ।
तहव्वरखाँ	... ...	
अकवर	... ...	औरंगजेबके चारों लड़के ।
मौजम	... .	
आजिम	... ...	
कामवख्श	... ...	
भीमसिंह	... ...	राना राजसिंहके लड़के।
जयसिंह	... ...	
समरदास	... ...	दुर्गादासके भाई ।
अजितसिंह	... ...	जसवन्तसिंहका लड़का।
कासिम	... ...	एक मुसलमान ।

नटी

गुलनार	... ...	औरंगजेबकी वेगम ।
महामाया	... ...	जसवन्तसिहकी रानी ।
कमला	... ...	जयसिंहकी रानियाँ ।
सरस्वती	... ...	
रजिया	.. ..	अकवरकी लडकी ।

दुर्गादास ।

पहला अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान—दिल्लीके महलमें सम्राट् औरगजेवका सभा-भवन ।

समय—सवेरे आठ वजे ।

[सिंहासनपर वादशाह औरगजेव वैठे हुए हैं । उनके वाईं ओर वीकानेरके राजा श्यामसिंह वैठे हैं। दाहनी ओर तहव्वरखाँ और दो सिपाही एकाग्र भावसे नीची निगाह किये खडे हैं ।सामने राठौर-सेनापति दुर्गादास और उनके भाई समरदास खडे हैं।]

औरगजेव—दुर्गादास ! जसवन्तसिंहकी मौतको मुगल वादशाहतकी वदनसीवी समझना चाहिए ।

दुर्गादास—जहाँपनाह ! साम्राज्यकी भलाईके लिए–राजाकी आज्ञाका पालन करनेके लिए–मरनेमें हरएक प्रजाका गौरव है ।

औरगजेव—तुमने ठीक कहा दुर्गादास ! जसवन्तसिंहके सिवा वागी कावुलियोंको और कौन कावूमें ला सकता ? उनका मुझ पर वडा एहसान है—इस जिन्दगीमें मैं उस एहसानका वदला नहीं चुका सकता—(श्यामसिंहसे) क्यों न राजासाहव ?

श्याम०—वेशक।

समरदास—क्यों? जहाँपनाहने तो जसवन्तसिंहके लड़के पृथ्वी-सिंहकी जान लेकर उसका वदला चुका दिया!

औरंग०—मैंने उसकी जान ली! ऐ जवान! तुमको होश नहीं कि तुम किसे यह तोहमत लगा रहे हो! मैंने उसकी जान ली! मै पृथ्वीसिंहको अपने लड़केकी तरह चाहता था। मैंने उसे अपने हाथसे खिलतकी पोशाक पहनाई थी।

समर०—सम्राट्! उस अवोध वालकने भी यही समझा था। बेचारा सरल वालक नहीं जानता था कि वह पोशाक जहरीली है।

श्याम०—समरदास! तुमको कुछ होश है कि तुम किससे वातें कर रहे हो?

समर०—जानता हूँ राजासाहव! आपके प्रभुके साथ—अपने प्रभुके साथ नहीं।

(औरगजेव कुछ चौंक पडे। अपने मुँह पर इस प्रकार अपना कलंक सुननेका उनको अभ्यास न था। उनकी भौंहोंमे वल पड गये। लेकिन तत्काल ही उन्होने अपनेको संभाल लिया।)

औरग०—कौन कहता है कि वह पोशाक जहरीली थी?

दुर्गा०—नहीं जहाँपनाह! इसका कोई प्रमाण नहीं है। यह सर्व-साधारणका अनुमानमात्र है कि वह पोशाक जहरीली थी।

समर०—(क्रोधके साथ) अनुमान! पोशाक पहननेके कुछ ही समय वाद विषके वेगसे तडप तड़प कर बेचारा मर गया। मैने क्या कुअॅर पृथ्वीसिंहकी मौत देखी नहीं?— अनुमान! तो जसवन्त-सिंहको अफगानिस्तान भेजकर उनकी हत्या कराना भी अनुमान है! और आज उनकी रानी और छोटे कुअॅरको दिल्लीमें रोक रखना

भी अनुमान है ! फिर तो तुम अनुमान हो; मैं अनुमान हू; सम्राट् औरगजेब अनुमान है; मुगल-साम्राज्य अनुमान है, यह सारा विश्व अनुमान है ! यह अनुमान नहीं है, दुर्गादास !—यह ध्रुव, स्थूल, प्रत्यक्ष है ।

दुर्गा०—क्रोधको शान्त करो भैया !—याद करो, क्या प्रतिज्ञा करके आये थे ।

समर०—अच्छा ! मैं चुप हूँ ! (बादशाहसे)—किन्तु एक बात कहे रखता हूँ जनाब ! यह न समझिएगा कि हम लोग बिलकुल दूध-पीते बच्चे है, कुछ नहीं समझते ! कुछ कुछ समझते हैं ।

दुर्गा०—राजाधिराज ! मेरे भाईका स्वभाव ही कुछ कड़ा है—माफ कीजिए ।—जहाँपनाह, हम लोग आज बादशाहकी सेवामें एक विनीत प्रार्थना करने आये है ।

औरग०—अच्छी बात है ! कहो ।

श्याम०—कहो दुर्गादास ! भय क्या है ! सम्राट् उदार है । उन्होंने तुम्हारे बदमिजाज भाईको माफ कर दिया है । तुम्हारे लिए भयका कोई कारण नहीं है ।

दुर्गा०—हम लोगोंका विनीत निवेदन यही है कि जोधपुरकी महा-रानी—जसवन्तसिंहकी विधवा—बच्चोंको लेकर, अपने राज्यको लौट जाना चाहती हैं । इसी बारेमें मैं सम्राटसे आज्ञा माँगता हूँ ।

औरग०—इसमें मेरी इजाजतकी क्या जरूरत है ?

दुर्गा०—जहाँपनाहकी इजाजतकी क्या जरूरत है, सो तो मैं भी नहीं जानता । किन्तु मुगल-सेनापति तहव्वरखाँ—हुजूरकी आज्ञाके बिना महारानीको यहाँसे जाने देना नहीं चाहते ।

औरंग०—(तहव्वरखाँकी ओर देखकर) किस लिए तहव्वरखाँ?

तहव्वरखाँ—जहाँपनाहका ऐसा ही हुक्म मैं समझा था।

औरंग०—वह—हाँ, मैंने कहा था कि जसवन्तसिंहकी रानीको मैं दिल्लीसे जानेसे पहले खुश करना चाहता हूँ। जो मेहेरबानी दिखानेमें मैंने जसवन्तसिंहके साथ कुछ उठा नहीं रक्खा उस मेहेरबानीसे उनकी रानीको भी मैं महरूम नहीं रखना चाहता। (श्यामसिंहसे) क्यों राजासाहब?

श्याम०—जहाँपनाह जसवन्तसिंहके परिवार पर सदासे असीम अनुग्रह दिखाते आ रहे हैं।

समर०—सम्राट्!—मुझसे विना कहे रहा नहीं जाता दुर्गादास—सम्राट्! आप इतनी ही कृपा कीजिए कि खुश करनेका इरादा छोड दीजिए। आपकी भौंहोंमें बल पड़नेसे मैं उतना नहीं डरता, क्यों कि उनका भाव समझमें आजाता है। किन्तु आपकी हँसी देखकर बड़ा डर लगता है जनाब! क्योंकि उसका भाव कुछ समझमें नहीं आता।—सीधी भाषामें कहिए कि आप जसवन्तसिंहका सर्वनाश करना चाहते हैं, उनकी जिस तरह हत्या कराई है, उनके बड़े लडके पृथ्वीसिंहको जिस तरह मार डाला है, वैसे ही उनकी रानी और छोटे कुअँरको भी मारना चाहते हैं। कहिए सीधी भाषामें कि जसवन्तसिंहके कुलमें किसीको न रखिएगा। कहिए—हम समझ सकेंगे। मैं आपसे यही भिक्षा माँगता हूँ कि आप अनुग्रह न करें जनाब। आप लोगोंकी शत्रुतासे मित्रता बहुत भयानक है।

दुर्गा०—भैया! तुम क्या मेरी प्रार्थनाको व्यर्थ करनेके लिए आये हो?—तुम लौट जाओ।

समर०—जाता हूँ दुर्गादास । और एक बात—केवल एक बात कहूँगा। मैं एक बातमे जनाबके पूर्वपुरुष अकबरकी अपेक्षा जनाब पर अधिक श्रद्धा रखता हूँ । क्योकि आप उनकी तरह मीठी छुरी नहीं है। आप खालिस मुसलमान—सरल गवाँर कट्टर मुसलमान हैं । आप उनकी तरह ब्याहके बहानेसे हिन्दुओका हिन्दूपन नहीं नष्ट करते। सीधी, साफ और पैनी पुरानी मुसलमानी रीतिसे अपने धर्मका प्रचार करते है ।—कहिए, इससे मैं नहीं डरता । बस, अनुग्रह न कीजिएगा । जो अनुग्रह आप कर चुके हैं वही काफी है । वह अनुग्रह अभीतक हमारे सँभाले नहीं सँभला । दोहाई है, अब और अनुग्रह न कीजिएगा !— (प्रस्थान ।)

(तहव्वरखाँका आगे बढ़कर समरदासको रोकनेकी चेष्टा करना और औरंगजेबका मना करना ।)

औरग०—दुर्गादास ! तुम्हारी खातिरसे मैंने तुम्हारे बदमिजाज भाई-को माफ किया । लेकिन तुम्हारे भाईने एक[१] बात सच कही । मैं मीठी छुरी और ढोंगिया नहीं हूँ । मैं भीतर और बाहर मुसलमान हूँ। इस पुराने मजहबको फैलाने और बढ़ानेके लिए ही मैं इस तख्त पर बैठा हूँ! तख्त पर बैठनेके पहले मैंने चाहे जो किया हो—बादशाह होनेके बादसे मैं इसी धर्मकी फकीरी कर रहा हूँ ।

दुर्गा०—इस बातको मैं मानता हूँ जहाँपनाह !—उसके बाद भी अगर आपने किसीके साथ बुरा बर्ताव किया होगा तो बुरे आदमीके साथ । सो तो कुछ अनुचित नहीं है ।—इसको दयाकी दृष्टिसे उचित चाहे न भी कहें, लेकिन नीतिके विरुद्ध कभी नहीं कह सकते ।

औरंग०—यह तुम मानते हो ?

दुर्गा०—मानता हूँ ! लेकिन जहाँपनाह ! महाराज जसवन्तसिंहने अगर कभी भ्रमवश आपकी मर्जीके खिलाफ काम किया हो, तो भी उनकी विधवा रानी और नासमझ नन्हाँ बच्चा सम्राटकी कोपदृष्टिमें पड़नेके पात्र नहीं हैं। उन्होंने कुछ अपराध नहीं किया।

औरंग०—दुर्गादास ! मै उनको सताना नहीं चाहता; खुश करना चाहता हूँ।

श्याम०—सम्राट् उनको खुश करना चाहते हैं दुर्गादास !

दुर्गा०—सम्राटकी इस इच्छाको जानकर ही महारानीकी खुशीका ठिकाना न रहेगा !—बस, अब आज्ञा दीजिए।

औरंग०—(श्यामसिंहसे) राजासाहब, इस समय आप मेरी खास बैठकमें चलकर ठहरिए। मैं आता हूँ। (श्यामसिंहका प्रस्थान।)

औरंग०—(दुर्गादाससे) मैं देखता हूँ कि तुम सिर्फ मालिकके जाँनिसार नौकर ही नहीं हो; तुम सल्तनतके दावपेंचोंमें भी खूब होशियार हो। तुमसे चालाकी करना फिजूल है। तो सच बात सुनो ! मैं जसवन्तसिंहकी रानी और कुअँरको चाहता हूँ।

दुर्गा०—सो तो मैं पहलेसे जानता हूँ जहाँपनाह ! लेकिन इसका कारण नहीं जान पड़ता। महारानी स्त्री हैं, और जसवन्तसिंहका लड़का दुधमुहा बच्चा है। उन्हें लेकर सम्राट् क्या करेंगे ?

औरंग०—दुर्गादास ! शायद यह तुम जानते हो कि हिन्दोस्तानका बादशाह अपनी हर एक रिआयाके आगे अपने हरएक कामका मतलब बतलानेके लिए मजबूर नहीं है।

दुर्गा०—(घड़ीभर सोचकर) तो जहाँपनाह, मेरी प्रार्थना बिल्कुल बेकार है ?

औरंग०—हाँ । बिल्कुल बेकार है ।

दुर्गा०—तो फिर मुझे और कुछ कहना नहीं है ।

औरंग०—तुम जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेको मुझे सौंपनेके लिए तैयार नहीं हो?

दुर्गा०—जबतक दम है तबतक नहीं ।

औरंग०—सुनो दुर्गादास ! तुम जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेको मुझे दे दो । मैं तुम्हें खूब इनाम दूँगा ।

दुर्गा०—(हँसकर) सम्राट्—मैं इस दर्जेके आदमियोंसे कुछ ऊँचे खयालका आदमी हूँ । दुर्गादास जीवनमें केवल अपने कर्त्तव्यको मुख्य मानता है और उसे ही पहचानता है । दुर्गादासके दममे दम रहते किसीकी मजाल नहीं कि उसके स्वर्गवासी स्वामी जसवन्तसिंहके परिवारके किसी आदमीके बदन पर हाथ लगा सके ।—अच्छा चलता हूँ जहाँपनाह ! आदाब !

औरंग०—ठहरो । दुर्गादासके दममे दम रहते शायद वैसा न हो सके । लेकिन दुर्गादासके मरने पर तो हो सकेगा । तहव्वरखाँ—गिरफ्तार कर लो ।

[तहव्वरखाँ आगे बढता है ।]

दुर्गा०—(म्यानसे तरवार खींचकर) खबरदार !—इसके लिए भी तैयार होकर आया हूँ जनाब ।

(दुर्गादास कमरमें लटकती हुई तुरही या बिगुलको बजाते हैं और उसे सुनकर तत्काल ही नंगी तरवार हाथमें लिये पाँच राजपूत दरबारमे घुस आते हैं ।)

दुर्गा०—ये पाँच आदमी आपने देखे जहाँपनाह !—अबकी तुरही बजाते ही पाँच सौ आदमी यहाँ मौजूद हो जायँगे—समझकर काम कीजिएगा ।

औरंग०—जाओ।

(सिपाहियोंसहित दुर्गादासका प्रस्थान।)

औरंग०—(दमभर सन्नाटेमें रहनेके बाद) दुर्गादास! मैं जानता था कि तुम मालिकके खैरख्वाह, होशियार, दिलेर, बहादुर हो। लेकिन मुझे यह खयाल न था कि तुम्हारी इतनी हिम्मत हो जायगी।—(तहव्वरखाँसे) तहव्वरखाँ!

तहव्वर०—खुदावन्द!

औरंग०—सिपहसालार दिलेरखाँसे कहो, मेरा हुक्म है कि वह अभी फौज ले जाकर जसवन्तके घरको घेर ले। जाओ।

(पर्दा बदलता है।)

दूसरा दृश्य।



स्थान—दिल्लीके शाही महलमें बेगम गुलनारका कमरा।

समय—दोपहर।

गुलनार—(कमरेमें टहलती हुई आप-ही-आप) जोधपुरकी ी!—तूने एक दिन गरूरके मारे मुझे मेरे सामने मोल ली ई बाँदी बेगम कहा था। तेरे उस घमंडको आज मैंने ठुकराकर ् कर दिया कि नहीं! तेरे शौहरको काबुल भेज कर कत्ल करवा , तेरे बडे लड़केको जहर देकर मरवा डाला। अब तेरे सामने ही तेरे छोटे लड़केकी जान लूँगी। तुझको अपने पैरोंका धोअन पिलाऊँगी। फिर तुझे जीते ही गड़वा दूँगी। जानती है जोधपुरकी रानी! यह मोल ली हुई बाँदी बेगम ही आज इस मुगलोंकी बड़ी भारी सल्तनत पर हुकूमत कर रही है।—और औरंगजेब ?

औरंगजेब तो मेरे हाथकी पुतली—मेरी उँगलीके इशारे पर नाचनेवाले है। पर लोग कुछ और ही समझते हैं। यह लोगोंकी हद-दर्जेकी बेवकूफी है। नहीं तो इस जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेकी औरंगजेबको क्या जरूरत थी ? कोई अपने दिलसे एक दफा यह सवाल भी नहीं करता।

[औरगजेबका प्रवेश ।]

गुलनार—कौन! बादशाह सलामत ?—बन्दगी जहाँपनाह!

औरंग०—गुलनार! तुम यहाँ अकेली ?

गुलनार—जोधपुरकी रानीकी राह देख रही थी।—कहाँ है वह ?

औरंग०—अभीतक पकड़ी नहीं जा सकी।

गुलनार—अभीतक पकड़ी नहीं जा सकी ?

औरंग०—नहीं!—दुर्गादास उसे देनेके लिए राजी न होकर दरबारसे लौट गया।

गुलनार—जिन्दा लौट गया ?

औरंग०—हाँ।—उसके साथ फौज थी।

गुलनार—और आपके यहाँ क्या फौज न थी!—बड़ी शर्मकी बात है!

औरंग०—प्यारी—

गुलनार—मैं कोई बात सुनना नहीं चाहती जहाँपनाह! मैं आज ही शामके पहले जोधपुरकी रानीको चाहती हूँ।

औरंग०—गुलनार! मैंने रानीका घर घेरनेके लिए दिलेरखाँको भेजा है।

गुलनार—अच्छा!—शामके पहले मै उसे चाहती हूँ। याद रहे।

(प्रस्थान ।)

औरंग०—(जाते जाते अपने आप) इस दुर्गादासकी कैसी हिम्मत है। अभीतक यही सोच रहा हूँ।—मेरे दरबारमे मेरे सामने तलवार निकालकर और घोडेपर चढकर चल दिया!—ऐसी हिम्मत तो पहले किसीकी, उसके मालिक जसवन्तसिंहकी भी, नहीं देखी गई। (धीरे धीरे प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।

स्थान—मुगल-सेनापति दिलेरखॉंके घरकी वाहरी वैठक।

समय—तीसरा प्रहर।

[दिलेरखॉं फौजी पोशाक पहन रहा है और उसका प्रधान कर्मचारी तहव्वरखॉं सामने खड़ा है।]

दिलेरखॉं—क्या कहा खॉंसाहव? राठौर सेनापति दुर्गादास वादशाहकी नाकके पास तलवार घुमाकर चला गया?

तहव्वरखॉं—हॉं!

दिलेर०—और तुम खड़े खड़े देखा किये?

तहव्वर०—जी हॉं!

दिलेर०—सीधे होकर?

तहव्वर०—जहॉंतक हो सका।

दिलेर०—जहॉंतक हो सका, इसका क्या मतलव?

तहव्वर०—यही, वादशाहकी नाकके ऊपर उसकी तरवार घूमी न—

दिलेर०—वादशाहकी नाकके ऊपर घूमी?

तहव्वर०—वादशाहकी नाकके ऊपर घूमी!—और खूव घूमी!

दिलेर०—तब शायद तुम जरा टेढे हो गये ?

तहव्वर०—हाँ साहब टेढा हो गया! मै था, इससे टेढा हो गया! और कोई होता तो चित हो जाता!

दिलेर०—अपनी तरवार क्यों नहीं निकाली ?

तहव्वर०—तरवार निकालनेका वक्त ही कहा मिला ?

दिलेर०—वक्त ही नहीं मिला ?

तहव्वर०—अरे उस राजपूतने एकाएक इतनी जल्दी तरवार खींच ली कि कोई भी भला आदमी तरवार खींचनेमे उतनी फुर्ती न करेगा। बादको उसके चलेजाने पर—

दिलेर०—शायद तुमने तरवार खींची ?

तहव्वर०—तब फिर तरवार खींचकर क्या करता ?

दिलेर०—उसके चले जाने पर फिर तुमने क्या किया ?

तहव्वर०—नाकमें हाथ लगाकर देखा—नाक है कि नहीं!

दिलेर०—शायद तुमको नाकके होनेमें शक हुआ ?

तहव्वर०—कुछ शक तो जरूर हुआ। उस राठौरने इस तरह जल्दीसे तरवार खींचकर घुमाई थी कि उसके साथ नाकका कुछ हिस्सा चला जाना ताज्जुब न था!

दिलेर०—(मुसकराकर) बेशक बिलकुल नई बात थी। दुर्गादास देखनेके लायक आदमी है।

तहव्वर०—उसे देखनेके लिए ही बादशाहने तुमको बुलाया है। तुम्हारा तो पोशाक पहनना ही खतम नहीं होता!

दिलेर०—अरे ठहरो! इस वक्त जरा आराम करनेको जी चाहता था, हुक्म हुआ, अभी एक पागलका पीछा करो। क्या यह मामूली काम तुम नहीं कर सकते थे ?

तहव्वर०—नहीं! मै उसके साथ ज्यादह जान-पहचान बढ़ाना नहीं चाहता।—इसके सिवा—

दिलेर०—इसके सिवा ?

तहव्वर०—इसके सिवा राजपूतकी कौम पर मुझे एक तरहकी नफ़रत है। वे लोग लड़ना ही नहीं जानते।

दिलेर०—किस तरह ?

तहव्वर०—अरे वे लड़ते हैं, लेकिन लड़ाईका कोई कायदा मान कर नहीं लड़ते! चट तरवार निकाली और झट सिर काट डाला! अपने सिरका कुछ खयाल नहीं रखते। मैने देखा, उसकी नजर बराबर मेरे ही इस सिर पर थी। ऐसे बेवकूफसे लड़ाई लड़नी चाहिए!

दिलेर०—नजर शायद तुम्हारे ही सिर पर थी ?

तहव्वर०—हॉ—अरे अपने सिरका खयाल रखकर लड़ा जाता है—वह तो उधरका कुछ भी खयाल न रखकर तरवार घुमाने लगा! दुश्मनोंकी फौजको तो उसने घुइयोंका जगलही समझ लिया!

दिलेर०—राजपूतोकी फौज कितनी है!

तहव्वर०—कोई ढाई सौ होगी!

दिलेर०—जाओ तहव्वरखॉ, पॉच हजार मुगल-सिपाहियोंको पार होनेका हुक्म दो! जो लोग जानकी पर्वा न करके जगमें ८ जाते हैं उन्हें एक खौफनाक कौम समझना चाहिए, उनसे च समझकर भिड़ना चाहिए। पॉच हजार मुगल-सवार—समझे ?—जाओ।

(तहव्वरका प्रस्थान।)

दिलेर०—(अपने मनमे) यह राजपूत कौम बेशक बडी दिलेर कौम है! लेकिन बादशाहके इस हुक्मका तो कुछ मतलब समझमे

नहीं आता । उन्होंने जसवन्तसिंहको कत्ल करा डाला, इसलिए कि उनसे बादशाह खौफ खाते थे। लेकिन अब राजासाहबकी रानी और बच्चेपर यह नाराजगी—यह सितम—किस लिए है?— चलूँ घरमें बीवी और बच्चोंसे मिल लूँ। मुमकिन है कि लड़ाईसे न लौटूँ ।

(प्रस्थान ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—मेवारके राना राजसिंहका महल ।

समय—तीसरा पहर ।

[राजकुमार जयसिंहकी अभी ब्याह कर लाई हुई दूसरी स्त्री कमलादेवी अकेली खडी हुई है ।]

कमला०—(आप-ही-आप) कैसा तुमको पेंचमें डाला है स्वामी! अब उसीमें भरमते रहो । बड़ी रानी तो जैसे सन्नाटेमें आगई हैं! एक दूसरे आदमीने आकर इतने थोड़े दिनोंमें उनके मुँहका कौर छीन लिया! कैसे दुखकी बात है!—हाः हाः हाः—मन्त्र जानती हूँ बडी रानी, मन्त्र जानती हूँ!—खूब हुआ! ऐसे स्वामी ऐसे स्वामी,—राना राजसिंहके पुत्र,—ऐसे स्वामीको अकेले छिपकर अपने सुखकी सामग्री बनाना चाहती थीं बड़ी रानी! लाज भी नहीं आई!—राजाके यही पुत्र तो मेवारके राना होंगे। और तुमने अकेले रानी होना विचारा था! पर यह हो नहीं सकता बड़ी रानी! कैसे चील्हकी तरह झपट्टा मारकर छीन लिया है ।—क्यों! रानी होओगी? होओ! और भीमसिंह! तुम राजा होओगे? हो चुके! रानाने अपने हाथसे मेरे स्वामीके हाथमें 'राखी' बाँध दी है, जानते हो? जेठजी! इसकी कुछ खबर है? इसके सिवा मेरे स्वामी ही तो रानाको

प्यारे हैं। करोगे क्या भीमसिंह!—दोनों भाइयोंमें खूब झगड़ा ठनवा दिया है! भीमसिंह अभीसे जायँ, दूर हों! ऐसी ही चाल लडाई है! उस चालमें तुमको मात खानी ही पड़ेगी! उसके बाद महाराना जयसिंह मेवारके राना होंगे और श्रीमती कमलादेवी मेवारकी महारानी बनेंगी—और तुम बड़ी रानी—हटजाओ—बड़ी रानी?—खिसक जाओ।

[चिल्लाती हुई एक धायका प्रवेश।]

धाय—अरे बाप रे!

कमला—क्या हुआ?

धाय—अरे बापरे! एकदम महाभारत—ऐसा काण्ड तो कभी देखा नहीं था जी—अरे बापरे!

कमला—मर हरामजादी! मै पूछती हूँ, हुआ क्या?

धाय—अरे एकदम लकाकाड है, और क्या?

कमला—अरे कह तो सही, हुआ क्या?

धाय—यही छोटे कुँअर—यही जयसिंह—तुम्हारे स्वामीजी।

कमला—हाँ—उन्होंने क्या किया?

धाय—उन्होंने, यही बड़े कुअर जो भीमसिंह हैं—उनके पैरमें ::र निकालकर एक हाथ—अरे बापरे, एकदम खूनकी नदी!

कमला—ऐं! उसके बाद?

धाय—उसके बाद फिर क्या?—बडे कुँअर भीमसिंहने छोटे कुँअर ·यसिंहकी गर्दन पकड़ ली, इसी समय रानासाहब पहुँच गये। आकर उन्होंने बडे कुअंरको बहुत बका-झका—वे एकदम सातों काड रामायण सुना गये। भीमसिंहने एक बात भी नहीं कही। चुपचाप बाहर चले गये! बेचारेका चेहरा उदास हो गया।

कमला—अच्छा हुआ ।

धाय—यह तुम क्या कह रही हो ! बड़े कुँअर बहुत अच्छे स्वभावके आदमी है ! देशभरके आदमी उन्हे अच्छा कहते है । और छोटे कुँअर भी अच्छे हैं ! मैने तो उन्हें अपने हाथों खिलाया है ।—सारे झगडोकी जड़ बस तुम्हीं हो बहू !

कमला—चुप हरामजादी !

धाय—अरे बापरे ! यह तो एकदम ताड़का देख पडती है ।

(धाय जान लेकर भागती है ।)

कमला—(आप-ही-आप) क्या ! यहाँतक नौबत आगई ? यहाँतक बात बढ़नेकी बात तो मैने भी नहीं सोची थी ! खैर, बुरा ही क्या है ! पहलेहीसे फैसला हो जाना चाहिए ।

[सरस्वतीका प्रवेश ।]

सरस्वती—कमला ! यह क्या तुम्हारे योग्य काम हो रहा है बहन ? जानती हो, आज क्या हुआ है ?

कमला—सो तो जानती हूँ !—मगर इसमें मैंने क्या किया ?

सरस्वती—स्वामीको बराबर तुम बड़े भाईके विरुद्ध बहकाती हो—जोश दिलाती हो ।

कमला—कौन कहता है ?

सरस्वती—मै कहती हूँ ।

कमला—झूठ बात हैं । जेठजी हीं तो झगडा खडा करते है—उनकी नजर सदासे मेवारकी गद्दी पर है । यही तो उनका दोप है ।

सरस्वती—छोटी रानी ! यह मुझे अच्छी तरह माल्रूम है, वे इस गद्दीको नहीं चाहते,—और अगर उनकी नजर इस गद्दी पर होगी, तो उसमें अनुचित क्या है ? बडे भाई तो वही है !

कमला—हाँ, घटे दो घटेकी बड़ाई–छुटाई जरूर है। मगर रानासाहबने खुद छोटे कुअँरके, पैदा होनेके दिन, राखी बाँध दी है। इसीके कारण तो झगड़ा है।

सरस्वती—अगर यही सच है तो हमें यह चेष्टा क्यों न करनी चाहिए कि जिसमें यह भाई–भाईका विरोध मिट कर दोनोंमें प्रेम बढे, जिसमे यह काला बादल, वज्र न गिरा कर, पानी होकर बरस जाय और उससे प्रेमकी बादल बेल लहलहा उठे, जिसमें यह आग सब जलाकर राख न कर दे, बल्कि दो हृदयोंको गलाकर एकमें ढाल दे।

कमला—मैं इस बातपर तुम्हारे साथ विचार करना नहीं चाहती अपने स्वामीकी बात मैं आप समझ लूँगी।

सरस्वती—बहन! क्या वे तुम्हारे ही स्वामी है, मेरे कोई नहीं हैं?

कमला—तो तुम्हीं उनसे समझा कर कहो। मेरे साथ झगडा करने क्यों आई हो? (प्रस्थान।)

सरस्वती—मै उनसे समझाकर कहूँ! हाय रे भाग्य! एक दिन [illegible]स था, जब वे मेरी बात सुनते थे। उसके बाद तुमने आकर उन पर कौनसा जादू कर दिया, सो तुम्हीं जानो बहन!

[जयसिंहका प्रवेश।]

जयसिंह—कौन? सरस्वती? मैं समझा था, कमला।

सरस्वती—समझे थे, सच? इतनी बड़ी भूल की थी? किन्तु वह भूल इतनी जल्दी क्यों मालूम पड गई! वह भूल समझनेके पहले, मुझे कमला जानकर, एक बार प्राणेश्वरी कहकर, पुकारा क्यों नहीं? मैं भूलसे ही एक बार समझती कि मुझे पुकार रहे हो! मुझे भी वह

भूल माल्म पड़ जाती, लेकिन भूलसे ही घडीभरके लिए स्वर्गीय सुखका अनुभव कर लेती !

जयसिंह—सरस्वती, मै अब जाता हूँ । मुझे एक जरूरी काम है।

सरस्वती—जरा ठहरो !—मै तुम्हे अपने हृदयका जोश जतानेके लिए नहीं ठहराती। जो चला गया वह तो अब लौट नहीं सकता !—सुनो ! एक बात पूछती हूँ । बड़े भाईके साथ आज फिर झगड़ा किया था ?

जयसिंह—उसमें मेरा दोष नहीं है ।

सरस्वती—उन्हींका दोष है ?

जयसिंह—मैंने क्रोधमें आकर उनके पैरमें तरवार मार दी थी, उन्होंने मेरी गर्दन पकड़ ली थी ।

सरस्वती—तो इसमें उन्हींका दोष ठहरा !—प्रभु, तुम तो ऐसे नहीं थे ! छोटी रानी तुमको सब नाच नचा रही हैं । भाई भाई आपसमें मत लडो स्वामी ! अगर छोटी रानीने तुमको यह सुझाया हो कि जेठजी मेवारकी गद्दी लेना चाहते हैं, तो यह सरासर झूठ है । जेठजी एक उदार महापुरुष हैं ।

जयसिंह—और मैं नीच हूँ !—खूब !—

सरस्वती—मैंने यह नहीं कहा । मै यह कहती हूँ कि तुम्हारे कानोंमें जो ऐसी बातें भर रहा है वह नीच है—वह तुम्हारा हितचिंतक नहीं है। वह तुम्हारा सर्वनाश कर रहा है ! लो वे जेठजी आरहे हैं । मैं जाती हूँ । स्वामी, जो तुममें कुछ भी मनुष्यत्व रह गया हो तो अभी अपने भाईसे क्षमा-प्रार्थना कर लो । (प्रस्थान ।)

भूल मालूम पड़ जाती, लेकिन भूलसे ही घडीभरके लिए स्वर्गीय सुखका अनुभव कर लेती !

जयसिंह—सरस्वती, मै अब जाता हूँ । मुझे एक जरूरी काम है ।

सरस्वती—जरा ठहरो !—मै तुम्हे अपने हृदयका जोश जतानेके लिए नहीं ठहराती। जो चला गया वह तो अब लौट नहीं सकता !—सुनो ! एक बात पूछती हूँ । बड़े भाईके साथ आज फिर झगड़ा किया था ?

जयसिंह—उसमें मेरा दोष नहीं है ।

सरस्वती—उन्हींका दोष है ?

जयसिंह—मैंने क्रोधमें आकर उनके पैरमें तरवार मार दी थी, उन्होंने मेरी गर्दन पकड़ ली थी ।

सरस्वती—तो इसमें उन्हींका दोप ठहरा !—प्रभु, तुम तो ऐसे नहीं थे ! छोटी रानी तुमको सब नाच नचा रही हैं । भाई भाई आपसमें मत लडो स्वामी ! अगर छोटी रानीने तुमको यह सुझाया हो कि जेठजी मेवारकी गद्दी लेना चाहते हैं, तो यह सरासर झूठ है । जेठजी एक उदार महापुरुष हैं ।

जयसिंह—और मैं नीच हूँ !—खूब !—

सरस्वती—मैंने यह नहीं कहा । मैं यह कहती हूँ कि तुम्हारे कानोंमें जो ऐसी बातें भर रहा है वह नीच है—वह तुम्हारा हितचिंतक नहीं है। वह तुम्हारा सर्वनाश कर रहा है ! लो वे जेठजी आरहे है । मैं जाती हूँ । स्वामी, जो तुममें कुछ भी मनुष्यत्व रह गया हो तो अभी अपने भाईसे क्षमा-प्रार्थना कर लो ।　　　　(प्रस्थान ।)

कमला—हाँ, घंटे दो घंटेकी बड़ाई–छुटाई जरूर है। मगर रानासाहबने खुद छोटे कुअँरके, पैदा होनेके दिन, राखी बाँध दी है। इसीके कारण तो झगड़ा है।

सरस्वती—अगर यही सच है तो हमे यह चेष्टा क्यों न करनी चाहिए कि जिसमे यह भाई–भाईका विरोध मिट कर दोनोंमें प्रेम बढे, जिसमे यह काला बादल, वज्र न गिरा कर, पानी होकर बरस जाय और उससे प्रेमकी बादल बेल लहलहा उठे, जिसमें यह आग सब जलाकर राख न कर दे, बल्कि दो हृदयोको गलाकर एकमें ढाल दे।

कमला—मै इस बातपर तुम्हारे साथ विचार करना नहीं चाहती। अपने स्वामीकी बात मैं आप समझ लूँगी।

सरस्वती—बहन! क्या वे तुम्हारे ही स्वामी है, मेरे कोई नहीं हैं?

कमला—तो तुम्हीं उनसे समझा कर कहो। मेरे साथ झगडा करने क्यों आई हो? (प्रस्थान।)

सरस्वती—मैं उनसे समझाकर कहूं! हाय रे भाग्य! एक दिन ऐसा था, जब वे मेरी बात सुनते थे। उसके बाद तुमने आकर उन पर कौनसा जादू कर दिया, सो तुम्हीं जानो बहन!

[जयसिंहका प्रवेश।]

जयसिंह—कौन? सरस्वती? मैं समझा था, कमला।

सरस्वती—समझे थे, सच? इतनी बड़ी भूल की थी? किन्तु वह भूल इतनी जल्दी क्यों मालूम पड़ गई! वह भूल समझनेके पहले, मुझे कमला जानकर, एक बार प्राणेश्वरी कहकर, पुकारा क्यों नहीं? मैं भूलसे ही एक बार समझती कि मुझे पुकार रहे हो! मुझे भी वह

कमला—हाँ, घंटे दो घंटेकी बड़ाई–छुटाई जरूर है। मगर रानासाहबने खुद छोटे कुअँरके, पैदा होनेके दिन, राखी बाँध दी है। इसीके कारण तो झगड़ा है।

सरस्वती—अगर यही सच है तो हमे यह चेष्टा क्यों न करनी चाहिए कि जिससे यह भाई–भाईका विरोध मिट कर दोनोंमें प्रेम बढे, जिससे यह काला बादल, वज्र न गिरा कर, पानी होकर बरस जाय और उससे प्रेमकी बादल बेल लहलहा उठे, जिसमें यह आग सब जलाकर राख न कर दे, बल्कि दो हृदयोको गलाकर एकमें ढाल दे।

कमला—मै इस बातपर तुम्हारे साथ विचार करना नहीं चाहती। अपने स्वामीकी बात मै आप समझ लूँगी।

सरस्वती—बहन! क्या वे तुम्हारे ही स्वामी है, मेरे कोई नहीं हैं?

कमला—तो तुम्हीं उनसे समझा कर कहो। मेरे साथ झगडा करने क्यों आई हो? (प्रस्थान।)

सरस्वती—मै उनसे समझाकर कहूं! हाय रे भाग्य! एक दिन ऐसा था. जब वे मेरी बात सुनते थे। उसके बाद तुमने आकर उन पर कौनसा जादू कर दिया, सो तुम्हीं जानो बहन!

[जयसिंहका प्रवेश।]

जयसिंह—कौन? सरस्वती? मैं समझा था, कमला।

सरस्वती—समझे थे, सच? इतनी बडी भूल की थी? किन्तु वह भूल इतनी जल्दी क्यों मालूम पड गई! वह भूल समझनेके पहले, मुझे कमला जानकर, एक बार प्राणेश्वरी कहकर, पुकारा क्यों नहीं? मै भूलसे ही एक बार समझती कि मुझे पुकार रहे हो! मुझे भी वह

भूल माळूम पड़ जाती, लेकिन भूलसे ही घड़ीभरके लिए स्वर्गीय सुखका अनुभव कर लेती !

जयसिंह—सरस्वती, मै अब जाता हूँ। मुझे एक जरूरी काम है।

सरस्वती—जरा ठहरो !—मै तुम्हें अपने हृदयका जोश जतानेके लिए नहीं ठहराती। जो चला गया वह तो अब लौट नहीं सकता !—सुनो ! एक बात पूछती हूँ। बड़े भाईके साथ आज फिर झगड़ा किया था ?

जयसिंह—उसमें मेरा दोष नहीं है।

सरस्वती—उन्हींका दोष है ?

जयसिंह—मैंने क्रोधमें आकर उनके पैरमें तरवार मार दी थी, उन्होंने मेरी गर्दन पकड़ ली थी।

सरस्वती—तो इसमें उन्हींका दोप ठहरा !—प्रभु, तुम तो ऐसे नहीं थे ! छोटी रानी तुमको सब नाच नचा रही हैं। भाई भाई आपसमें मत लड़ो स्वामी ! अगर छोटी रानीने तुमको यह सुझाया हो कि जेठजी मेवारकी गद्दी लेना चाहते हैं, तो यह सरासर झूठ है। जेठजी एक उदार महापुरुप हैं।

जयसिंह—और मैं नीच हूँ !—खूब !—

सरस्वती—मैंने यह नहीं कहा। मै यह कहती हूँ कि तुम्हारे कानोंमे जो ऐसी बातें भर रहा है वह नीच है—वह तुम्हारा हितचिंतक नहीं है। वह तुम्हारा सर्वनाश कर रहा है ! लो वे जेठजी आरहे हैं। मैं जाती हूँ। स्वामी, जो तुममें कुछ भी मनुष्यत्व रह गया हो तो अभी अपने भाईसे क्षमा-प्रार्थना कर लो। (प्रस्थान।)

[भीमसिंहका प्रवेश।]

भीमसिंह—(कोमल स्वरसे) जयसिंह—भाई!

(जयसिंहने कुछ उत्तर नहीं दिया।)

भीमसिंह—जयसिंह—भाई—मैंने ही अनुचित किया! मुझे क्षमा करो।

(जयसिंहने फिर कुछ उत्तर नहीं दिया।)

भीमसिंह—भाई, उस समय मैं क्रोधको सँभाल नहीं सका। मुझे उचित था कि छोटे भाईको क्षमा करता।—भाई! मुझे क्षमा करो।

[राना राजसिंहका प्रवेश।]

राना—(भीमसिंहसे) क्यों भीमसिंह! जयसिंहने तरवार मारकर तुम्हें चोट पहुँचाई है?

भीम०—नहीं पिताजी, वह चोट बहुत हलकी है।

राना—मुझे यह नहीं मालूम था। धायकी जबानी मालूम हुआ। उसके बाद उस जगह रक्तकी रेखा देखकर जान पड़ा कि घायका [illegible]ना मात्र है।—देखूँ, कहाँ चोट लगी है?

भीम०—चोट बहुत हलकी है पिताजी!

राना—देखूँ।

(भीमसिंह दाहना पैर दिखाते हैं।)

राना—हूँ!—भीम! पुत्र! मैंने बिना देखे ही विचार किया। मेरा वह विचार अन्याय था। दण्ड तुमको नहीं, राजसिंहको देना चाहिए था। यह लो मेरी तरवार—मेरी ओरसे तुम इसे दण्ड दो।

भीम०—नहीं पिताजी, अन्याय मैंने ही किया। जयसिंह अभी नासमझ है।

राना—नहीं भीमसिंह ! मै अन्याय-विचार नहीं कर सकता । लोग कहते हैं, मैं जयसिंहको प्यार करता हूँ । यह हो सकता है; किन्तु विचारमें मैं न्याय्य ही करूँगा ।

भीम०—मैं उसे क्षमा करता हूँ ।

राना—नहीं भीमसिंह ! दण्ड दो । और एक बात मैं देखता हूँ कि कुछ दिनोंसे, चाहे जिस कारणसे हो, तुम दोनो भाइयोंकी वनती नहीं । आगे चलकर भी शायद तुम्हारी यह अनबन नहीं मिटेगी । दोनों भाई राज्यके लिए युद्ध करोगे । मेरे मरनेके बाद यह होनेकी अपेक्षा मेरी जिन्दगीमे ही फैसला हो जाय तो अच्छा । इससे राज्यको हानि न पहुँचेगी । यह लो तरवार । युद्ध करो ।

भीम०—पिताजी, मैं राज्य नहीं चाहता । मैं कसम खाता हूँ कि राज्यके लिए जयसिंहसे झगडा न करूँगा ।

राना—इसका प्रमाण क्या है ?

भीम०—मैं इसी घड़ी यह राज्य छोड़कर चला जाता हूँ ।—प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस राज्यके भीतर अगर जल-पान भी करूँ तो मैं आपका लड़का नहीं !

राना—(कुछ देरतक निस्तब्ध रहकर) तुमने आज बड़ी कठिन प्रतिज्ञा की है भीम !—तुम निर्दोष हो, जयसिंहके दोषके लिए तुम राज्यसे जन्मभरके वास्ते निकल जाओगे ! मैंने भूलसे राखी जयसिंहके हाथमे बॉध दी थी । इस समय जान पडता है, राज्यकी भलाईके लिए इस राज्यको छोड़कर तुम्हारा चला जाना ही ठीक है । किन्तु स्मरण रखना भीम ! तुम यह स्वार्थत्याग राज्यकी भलाईके विचारसे कर रहे हो !

भीम—आपके चरणोंकी ऐसी कृपा हो कि मैं इस राज्यकी भलाईके लिए ही अपने प्राण अर्पण कर सकूँ। प्रणाम पिताजी!–(जयसिंहसे) भाई! आशीर्वाद देता हूँ कि तुम विजयी और यशस्वी होओ।

(प्रस्थान।)

राना०—मेरा सच्चा लड़का है।—जयसिंह! वीरता किसे कहते हैं, देखो और सीखो।

(एक ओरसे राना और दूसरी ओरसे जयसिंह जाते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—दिल्लीमें जसवन्तसिंहका महल, दुमजिलेका बरामदा।

समय—तीसरा पहर।

[दुर्गादासके भाई समरदास और जोधपुरके सामन्त लोग उत्तेजित भावसे खड़े हैं।]

विजयसिंह—(समरदाससे) तो तुम हम लोगोंके विचारको व्यर्थ कर आये।

समरदास—क्रोधको सँभालना और कपटकी बातें करना मैंने सीखा ही नहीं।

मुकुन्दसिंह—तो फिर तुम वहाँ गये क्यों?

समरदास—जानेका एक मतलब था!—मैं उस पापी नरपिशाचको एक बार सामने खड़े होकर अच्छी तरह देखना चाहता था। मैं बादशाहसे कोई प्रार्थना करने नहीं गया था। वह काम दुर्गादास करें। मुझमें कौशल नहीं है, चातुरी नहीं है। मेरे सहायक भगवान् हैं, और यह तलवार है।

सुबलसिंह—सेनापति अभीतक दरबारसे लौटकर नहीं आये, क्या बात है?

विजयसिंह—बादशाहने धोखा देकर उन्हें कैद तो नहीं कर लिया?

समरदास—(उत्तेजित भावसे) क्या! यह भी संभव है?

सुबल०—कभी नहीं। हमारे सेनापति अच्छी तरह सोचे-समझे बिना किसी काममें हाथ नहीं लगाते।

मुकुन्द०—इस दुर्दिनमें हम लोगोंको उन्हींका एक सहारा है। यह तुरहीका शब्द सुन पडता है।—लो, वे सेनापति अपने घोड़ेको बेतहाशा भगाये चले आ रहे हैं!

विजय०—वे आ ही गये। चलो नीचे चलें। सुनें, क्या खबर है।

सुबल०—जरूरत क्या है। सेनापतिको यहीं न आने दो।

[नेपथ्यमें दुर्गादासका स्वर सुन पडता है।]

'तैयार रहो, तैयार रहो।'

समर०—तैयार! किस लिए?

सुबल०—वे देखो दुर्गादास ऊपर ही आगये।

[पसीनेसे तर दुर्गादासका प्रवेश।]

दुर्गा०—सब लोग तैयार हो जाओ।

समर०—किस लिए?

दुर्गा०—अपनी रक्षाके लिए।

विजय०—क्या खबर है, सुनें तो।

दुर्गा०—विस्तारके साथ कहनेके लिए समय नहीं है विजयसिंह! जसवन्तकी रानीको बादशाह नहीं छोडेगा, वह उनको पकड़ना चाहता है।—महारानी और उनके पुत्रको बचाना होगा।—अभी मुगल-सेना आकर इस घरको घेर लेगी।

विजय०—फिर उपाय क्या है ?

दुर्गा०—यही उपाय है कि हम लोग प्राण देनेके लिए तैयार हो जायँ। मित्रो, भाइयो, महारानीके लिए प्राण देनेको कौन कौन तैयार है ?

सब०—हम सभी तैयार हैं।

दुर्गा०—किन्तु, केवल प्राण देनेसे ही काम न होगा। महारानी और कुअँरको ऐसी जगह पहुँचाना चाहिए, जहाँ खटका न हो।

[रानीका प्रवेश।]

रानी०—(स्थिर स्वरसे) जसवन्तसिंहकी रानीके लिए कुछ खटका नहीं है। उसके लिए चिन्ता न करो दुर्गादास! उसके पुत्र को—जोधपुरनरेशके कुलदीपकको—बचाओ। इस वंशकी रक्षा करो। रानीके लिए भय नहीं है। वह मरना जानती है।—बच्चेको बचाओ दुर्गादास!

दुर्गा०—कुअँरको बचानेमें कोई कसर न रहेगी महारानी! कुअँ-रको ले आइए।

(रानीका प्रस्थान।)

दुर्गा०—विजयसिंह! कासिमको बुलाओ।

(विजयका प्रस्थान।)

दुर्गा०—भाई! बाहर एक मिठाईका झाबा रक्खा है, उसे ले आओ।

समर०—मिठाईका झाबा! किस लिए ?

दुर्गा०—यह बतानेके लिए समय नहीं है भाई!—जाओ ले आओ।

(समरसिंहका प्रस्थान।)

दुर्गा०—लो मुकुन्ददास!—यह, कासिम आगया।

[विजयसिंहके साथ कासिमका प्रवेश ।]

कासिम—(दुर्गादासको वन्दगी करके) सरदार, क्या हुआ है ?

दुर्गा०—कासिम ! तुमको एक काम करना होगा । राजकुमारकी जान बचानी होगी । मुगलोंकी सेना अभी आयगी कुअँरको छीननेके लिए !—तुम्हें उन्हें बचाना होगा ।

कासिम—जिस तरह आप कहे, मै कुअँरकी जान बचानेके लिए तैयार हूँ ।

[झावा लिये समरदासका प्रवेश ।]

दुर्गा०—तुम इसी मिठाईके झाव्रेमें कुअँरको रखकर ऊपरसे कपड़ा ढककर ले जाओ । तुम मुसलमान हो, तुमपर किसीको सन्देह न होगा ।—समझे ?

कासिम—कहाँ जाना होगा सरदार ?

दुर्गा०—दूरपर वह मन्दिरका कलशा देख पड़ता है ?

कासिम—हाँ, देख पड़ता है !

दुर्गा०—उसी मन्दिरके पुजारीके पास कुअँरको छोड़ आओ । उसके वाद जो करना होगा सो पुजारीको माल्हम है । मुगलोंकी सेना आती ही होगी । तुम अभी जाओ ।

कासिम—वहुत अच्छा सरदार ! मै कुअँरके लिए जानतक दे सकता हूँ ।

दुर्गा०—सो मैं जानता हूँ कासिम !—नहीं तो यह काम तुमको न सौंपता ।

[कुअँरको लिये रानीका प्रवेश ।]

दुर्गा०—रानीजी, कुअँरको कासिमके हाथमें दे दीजिए ।—कोई डर नहीं है—मैं कहता हूँ ।

रानी—तुम कहते हो तो मुझे कुछ डर नहीं है दुर्गादास!—कासिम! तुम्हारे भी धर्म है।

कासिम—कोई डर नहीं है रानीसाहब! मैं कुअँरको अपनी जानसे बढ़कर समझूंगा।

(कासिमका रानीके हाथसे कुअँरको लेना।)

रानी—(फिर कासिमके हाथसे कुअँरको लेकर चूमकर गद्गदस्वरसे) मेरे प्यारे बेटा!

दुर्गा०—दीजिए।—अब समय नहीं है।

रानी—(फिर कुअँरको चूमकर और कासिमके हाथमें देकर) धर्म साक्षी है कासिम!

कासिम—मैं खुदाको गवाह करता हूं। कोई डर नहीं है।

(दोनों हाथोंमें रखकर कुरानको कासिमने सिरपर रक्खा।)

समर०—अगर राहमें कासिमको कोई पकड़ ले?

रानी०—अगर कोई पकड़ ले कासिम, तो यह छुरी कुअँरके कलेजेमें भोंक देना। जिससे कुअँरको कोई औरंगजेबके पास न ले जासके।

(छुरी देना।)

दुर्गा०—कोई डर नहीं है रानीसाहब!—जाओ कासिम, इस पीछेके चोरदरवाजेसे निकल जाओ!—आओ, रास्ता दिखा दें।

(बच्चा लेकर कासिमका प्रस्थान। उसके पीछे दुर्गादास और उनके पीछे रानीका जाना।)

विजय०—दुर्गादास! धन्य है तुम्हारी समय परकी सूझ-बूझको!

मुकुन्द०—यह मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूं कि बादशाहके पास जानेके पहले ही दुर्गादास यह सब प्रबन्ध कर गये थे।

मुकुन्द०—वो वह मुगलसेना आ रही है।

विजय०—यह तो बेशुमार सेना है।

सुवल०—साथमें खुद सेनापति दिलेरखाँ हैं ।

[दुर्गादासका फिर प्रवेश ।]

दुर्गा०—वस ! अव कोई चिन्ता नहीं रही । मुगलसेना आगई है—अव तुम लोग मरनके लिए तयार हो जाओ ।

विजय०—और स्त्रियां ?

दुर्गा०—उनका भी उपाय किये देता हूं । वादशाहके पास जानेके पहले ही इस वारेमे क्यों न सोच समझ लिया ?—बुलाओ स्त्रियोको भैया !

(समरदासका प्रस्थान ।)

मुकुन्द०—वह देखो मुगलसेना आ गई !

विजय०—गोलियाँ चला रहे हैं !

सुवल०—दरवाजा तोड़नेकी चेष्टा कर रहे है !

मुकुन्द०—आग जला रहे हैं, शायद इस घरमें आग लगावेगे ।

दुर्गा०—अव हम स्त्रियोंके लिए कुछ प्रवन्ध न कर सकेंगे—समय नहीं है ।

[स्त्रियोंके साथ समरदासका प्रवेश ।]

दुर्गा०—मा वेटी वहनो ! आज तुम्हारे लिए वहुत ही कड़ी व्यवस्था करनी पडी । आज तुमको आगमें जलकर मरना होगा ।

एक प्रौढा स्त्री—यह तो हम लोगोंके लिए कोई नई बात नहीं है । सेनापति ! हम क्षत्रियोंकी—वीरोंकी—स्त्रियाँ है, मरना जानती हैं ।

दुर्गा०—और उपाय नहीं है माताओ ! हम लोग मरने जाते है—तुम, सव भी जाओ ! इस कमरेमें जाओ; इस कमरेमें वारूद भरी है । उसमें केवल तुम लोगोंके खडे रहने भरके लिए जगह है । वारूदके ऊपर जाकर खड़ी हो जाओ, उसके वाद और क्या कहूँ माताओ !—

एक स्त्री—उसके बाद हम अपने हाथसे आग लगा देगी। चलो बहनो!

[बाल खोले रानीका प्रवेश।]

स्त्रियाँ—महारानीकी जय हो।

रानी—जय? हमारी जय मौत है। मरने जाती हो!—जाओ! जाओ स्वर्गधाममें!—मैं आज तुम्हारे साथ न जाऊँगी। मैं आज अगर हो सका तो अपनेको बचाऊँगी।—मै अभी मरना चाहती थी दुर्गादास! पर नहीं, अभी, मैं नहीं मरूँगी। ऊपर आकाशसे मानों मुझसे कोई कह रहा है—'अभी समय नहीं आया—तुम्हारा काम बाकी है।' मुझे रहना होगा। दुर्गादास! अगर हो सके तो मुझे आज बचाओ। (घुटनोंके बल बैठकर और हाथ जोडकर) ईश्वर! आज मेरी रक्षा करो। (उठकर) उसके बाद—उसके बाद—देशमें आग सुलगाऊँगी, ऐसी आग सुलगाऊँगी कि सात समुद्रोंका पानी भी उसे बुझा न सकेगा!

दुर्गा०—हो सकेगा तो हम आज प्राण देकर महारानीकी रक्षा करेंगे।—तुम सब माताओ! जाओ, फाटक शत्रुओंकी लातोंसे टूटना ही चाहता है।

(रानीके सिवा और स्त्रियोंका प्रस्थान।)

रानी—तो फिर चलो दुर्गादास।—ठहरो। मै अपनी लड़की ले जाऊं। उसे छोड़ न जाऊँगी। छातीसे लगाकर ले जाऊँगी।—तुम सब चलो। (प्रस्थान।)

दुर्गा०—भाई!

समर०—भाई!

दुर्गा०—तो फिर चलो मरने।

समर०—चलो ।

दुर्गा०—जरा ठहरो, स्त्रियोंका अन्त देखते चले । यह—यह—(दूरपर भयानक शब्द सुन पड़ता है) सब समाप्त हो गया !—बस अब चलो ।

अमर०—चलो ।

दुर्गा०—भाई ! शायद यही आखरी मुलाकात हो । आओ, एक बार गलेसे मिल लें ।

(दोनों मिलते और पर्दा गिरता है ।)

छट्ठा दृश्य ।

स्थान—बादशाहका जनाना महल ।

समय—प्रात काल ।

[औरंगजेब अकेले टहल रहे हैं ।]

औरंग०—क्या जसवन्तकी रानी सिर्फ ढाई सौ राजपूतोंकी मदद-से पाँचहजार मुगलसिपाहियोंके बीचसे निकल गई !—और उस मुगल-फौजके साथ खुद दिलेरखाँ मौजूद था !—इसमें जरूर कुछ खास बात है !—दरबान !—

नेपथ्यमें—खुदावन्द !—

औरंग०—सिपहसालार दिलेरखाँको हाजिर करो ।

नेपथ्यमें—जो हुक्म ।

औरंग०—(आप-ही-आप) अब मैं बेगमको किस तरह मुँह दिखाऊँगा ?—अपनी इस बेइज्जतीके खयालसे मेरे तन-बदनमें आगसी लग रही है ।

[तेजीके साथ गुलनारका प्रवेश।]

गुलनार—बादशाह सलामत! यह जो सुनती हूँ, सो क्या सच है?

औरंग०—क्या?

गुलनार—यही खबर कि जसवंतकी रानी सिर्फ ढाई सौ फौजकी मददसे पाँच हजार मुगलोंके बीचसे चली गई।

औरंग०—हाँ बेगम, सच है।

गुलनार—तुम अपनी इसी फौज, इसी सिपहसालार और इसी ताकतसे हिन्दोस्तान पर हुकूमत करने बैठे हो?

औरंग०—प्यारी—

गुलनार—बस अब अपना प्यार और दुलार रहने दीजिए जहाँ-पनाह! मैंने अपनी एक मामूली ख्वाहिश पूरी करनेके लिए कहा था—उसका यह अंजाम हुआ!

औरंग०—जहाँ तक मुझसे हो सका, मैंने कोई बात उठा नहीं रक्खी।

गुलनार—तुमने कोई बात उठा नहीं रक्खी?—तुम्हारी ताकत इतनी ही है?—तुम कहना चाहते हो, आज तुम्हारे हाथमें पड-कर मुगल-बादशाहत इतनी कमजोर हो गई है कि एक औरत—सिर्फ ढाई सौ राजपूतोंको साथ लेकर—हिन्दोस्तानके बादशाहकी छाती पर लात रखती चली गई।—अफसोस है! लानत है!

(औरंगजेबने कुछ नहीं कहा।)

गुलनार—जसवन्तकी रानी इस वक्त कहाँ है?

औरंग०—शायद वह राना राजसिंहके यहाँ—मेवारमें होगी।

गुलनार—मेवार पर चढाई करो—मै जसवन्तकी रानी और उसके कुअँरको चाहती हूँ।

औरंग०—गुलनार, इस पर गौर किया जायगा ।

गुलनार—गौर ?—बेगम गुलनारका कहना ही क्या बादशाह औरंगजेबके माननेके लिए काफी नहीं है ?—गौर ?—सुनो, मेरी एक बात सुनो, जसवन्तकी रानीको मेरे आगे हाजिर होना ही चाहिए । वह चाहे आसमानमें हो, चाहे जमीन पर हो और चाहे जमीनके नीचे हो, मैं उसे चाहती हूँ। मेवार पर चढाई करो ।

औरंग०—बेगम—

गुलनार—मैं कुछ सुनना नहीं चाहती । मेवार पर चढाई करो ।

(गहरे रूठनेका भाव दिखाकर गुलनार चली जाती है और औरंगजेब अकेले यहाँ वहाँ टहलने लगते हैं ।)

औरंग०—(आप-ही-आप) मुझे इस बात पर यकीन नहीं होता । सिर्फ ढाईसौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंकी फौजके बीचसे निकल गये । इसमें जरूर दगाबाजी है ।—लेकिन इस पर ही कैसे यकीन कर लूँ कि सिपहसालार दिलेरखाँ दगाबाजी करेगा ! मेरा बचपनका दोस्त, जवानीका मददगार, बुढापेका सलाहकार दिलेरखाँ—सच्चा, सीधा और ऊँचे खयालका दिलेरखाँ—मुझसे दगा करेगा !—मैं यकीन नहीं ला सकता । लेकिन ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंकी फौजको चीरते-फाड़ते निकल गये और उस मुगलोंकी फौजका सरदार दिलेर-निडर और बहादुर खुद दिलेरखाँ था । इस पर ही कैसे यकीन लाऊँ ! जरूर इसके भीतर कोई खास बात है ।—वह दिलेरखाँ आगया ।

[दिलेरखाँका प्रवेश ।]

दिलेर०—वन्दगी जहाँपनाह !

औरंग०—दिलेरखाँ ! मैंने तुमको यह दर्याफ्त करनेके लिए बुला भेजा है कि यह बात क्या सच है कि—

दिलेर०—बादशाह सलामतने जो सुना है वह बिल्कुल ठीक है।

औरंग०—मुझे बात पूरी कहने दो—यह बात सच है कि नहीं कि सिर्फ ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंको काटते हुए उनके बीचसे निकल गये?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह, यह बात बिल्कुल सच है।

औरंग०—और उस फौजके सरदार खास तुम थे?

दिलेर०—हाँ हुजूर!

औरंग—लड़ाई हुई थी?

दिलेर०—हुजूर! इस लड़ाईमें पाँच हजार मुगल जवानोंमे शायद पाँच सौ बचे होंगे, और राजपूतोंमें शायद पाँच जवान।

औरंग०—और जसवन्तकी रानी?

दिलेर०—वह सरदारोंके साथ उदयपुरकी तरफ गई है।

औरंग०—उसका बच्चा?

दिलेर०—बच्चा उस फौजमें देख नहीं पडा हुजूर! हाँ, रानी एक तीन बरसकी लड़कीको अपनी छातीसे बांधे हुए थी।

औरंग०—मुगलोंकी फौज क्या भेड़-बकरोंसे भी गई-गुजरी है! एक औरतको पांच हजार जवान न रोक सके! उसके साथ सिर्फ ढाई सौ राजपूत थे?

दिलेर०—मालूम नही जहाँपनाह! लेकिन जब वह औरत मुगलोंकी फौजके आगे आकर खडी हो गई—उसका मुँह खुला हुआ था, बाल बिखरे हुए थे, छातीसे लगी हुई लडकी सो रही थी—तब महारानीकी ढाई सौ फौज ढाई लाख जान पड़ने लगी। मुगलोंकी फौजकी काली घटाके ऊपरसे बिजलीकी तरह रानी निकल गई! उसे छूनेकी किसीको हिम्मत नहीं हुई!

औरंग०—और तुम ?

दिलेर०—मैने दूरपर खड़े खड़े माकी वह अजीब मूरत देखी! कहना चाहा कि 'पकड़ो जसवन्तकी रानीको' मगर मुँहसे आवाज नहीं निकली! तरवार निकलनी चाही—तरवार नहीं उठी! पिस्तौल ली—पिस्तौल हाथसे गिर पड़ी!

औरंग०—दिलेरखाँ! तुम क्या पागल गये हो ?

दिलेर०—शायद हो गया हूँ। मालूम नही। लेकिन उसी दम जान पडा मानो मै एक और ही आदमी हो गया हूँ! दम भरमें मानो किसीने आकर मेरे दिलके दरवाजे पर धक्का मारकर बंद दरवाजेको खोल दिया! मुझे दूसरी ही दुनिया देख पड़ी!

औरंग०—इसीसे तुम पत्थरकी तरह पॉच हजार फौज लिये खड़े खड़े देखा किये ?

दिलेर०—हॉ जहॉपनाह! देखा, वह एक निराली ही झलक थी! उस पाकदामनी[1] शान और वहादुरीके रोवमे जैसे जादू भरा था जहॉपनाह! तअज्जुव!—वाल विखेरे, छाती पर सोती हुई लड़की लिये रानी वेधड़क हमारी फौजके आगे खड़ी हो गई! क्या कहूँ जहॉपनाह, कैसा वह नजारा[2] था। वह माकी मूरत सुवहसादिक[3]से भी साफ, वीनकी आवाजसे भी सुरीली और खुदाके नामसे भी पाक थी! मै जैसेका तैसा खडा रहा—मुझसे कुछ करते न वना।

औरंग०—उसके वाद ?

दिलेर०—उसके वाद रानीके चले जाने पर होश हुआ। चिल्ला उठा—'पकडो।' उसी समय हमारी ५००० तरवारें उस शामकी

1 सतीत्व। २ दृश्य। ३ उप काल।

धुँधली रोशनीमें चमक उठीं। दुश्मन लोग घूमकर खड़े हो गये। लड़ाई छिड गई। आदमी, भूकम्पमें बालूके ढूहकी तरह, जमीन पर गिरने लगे। लड़ाई खत्म होनेपर देखा, हमारे यहाँके पाँच सौ जवान बचे हैं, दुश्मनोंका एक आदमी भी नहीं। लाशोंमें दुर्गादास और उसके भाईका पता नहीं लगा।

औरंग०—दिलेर! तुमसे औरत अच्छी! जाओ!

(एक ओरसे औरंगजेब और दूसरी ओरसे दिलेरखाँका प्रस्थान।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—राना राजसिंहके महलका बाहरी हिस्सा।

समय—तीसरा पहर।

[ऊँचे आसनपर राना राजसिंह बैठे हैं। सामने बच्चेको गोदमें लिये जसवन्तसिंहकी रानी महामाया घुटने टेके बैठी है। दाहनी ओर दुर्गादास और कासिम खड़े हैं।]

रानी—राना! मेरे इस बच्चेको अपने गढमे स्थान दीजिए। बहुत दिनोंके लिए नहीं राना! थोडे ही दिनोंके लिए।

राज०—महामाया, तुम्हारा लड़का मेरा गैर नहीं है। राजपुत्रकी रक्षाके लिए यों गिडगिडानेकी क्या जरूरत है?—दुर्गादास! औरंगजेब इस बच्चेके भी प्राण लेना चाहते है?

दुर्गा०—नहीं तो इसके पकडनेका और क्या उद्देश्य हो सकता है महाराना?

रानी—राना! एक लडका और एक लडकी—केवल यही सपत्ति लेकर उस दिन दिल्लीसे निकली थी। राहमें लड़की मर गई। अब मेरी

सम्पत्तिमें केवल यही दूध-पीता बच्चा बचा है । मेरे इस सर्वस्व पुत्रकी रक्षा कीजिए महाराना ! ईश्वर आपका भला करेंगे ।

राज०—पुत्रके लिए कुछ भी चिन्ता न करो महामाया ! मैं अपने प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा ।

रानी—रानाकी जय हो ।

राज०—दुर्गादास ! औरंगजेबके अत्याचारकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ती चली जा रही है । उन्होंने हिन्दुओंके ऊपर फिरसे 'जिजिया' लगाया है । उसके ऊपर मारवाड़-पति जसवन्तसिंहके परिवार पर ऐसा दारुण अन्याय !—देखूँ, पत्र लिखकर शायद औरंगजेबको ठीक राह पर ला सकूँ ।

रानी—पत्र लिखकर ? अनुनय-विनय करके ? घुटने टेककर भीख माँगकर ? नहीं महाराना ! इस तरह ढीले पड़कर नहीं ! अबकी इस बादशाहको जड़से उखाड़े बिना मेरे कलेजेमें ठंडक नहीं पड़ेगी ।

राज०—नहीं महामाया ! रक्तकी नदियाँ बहाये बिना यह काम नहीं हो सकता ! जब एक राज्य स्थापित हो गया है तब उसे जड़से उखाड़नेकी चेष्टा करना अन्याय है । इसमे हजारों आदमियोंकी व्यर्थ हत्या होगी और देशकी प्रजाको कष्ट मिलेगा ।

रानी—अपने देशमे दूसरी जातिके राज्यकी रक्षा ?—यही क्या क्षात्रियोंका धर्म है ?

राज०—क्षत्रियोका धर्म केवल मार-काट करना ही नहीं है । मरने-मारनेकी विद्या ऊँचे दर्जेकी विद्या नहीं है । किसी आर्तकी रक्षा या अपनी रक्षाके अलावा और किसी उद्देश्यसे मारकाट करनेका नाम हत्या है । (इसके बाद कासिमकी ओर देखकर) यह कौन है ?

दुर्गादास—यह कासिमउल्ला है। मेरा पुराना मित्र है। इसने अपनी जानकी पर्वा न करके हमारे राजकुअँरकी रक्षा की है।

कासिम—रानासाहब! मैं इन लोगोंका पुराना नमकख्वार हूँ। सरदारने (दुर्गादासने) एक दफा बड़ी आफतसे मुझको बचाया था। तबसे मै इन्हींका गुलाम हूँ।

राजसिंह—दुर्गादास! कासिम भी तो मुसलमान है!

कासिम—महाराना, हमारी जातको बुरा न कहे। हमारी जात खराब नहीं है। हम सब हो सकते हैं, पर नमकहराम नहीं।

राज०—नहीं कासिम! मै तुम्हारी जातिकी निन्दा नहीं करता, बादशाहके साथ तुम्हारी तुलना करता हूँ। बादशाह इस छोटे बच्चेकी जान लेना चाहते हैं—और तुम—

कासिम—आहा, जरा देखो तो! कैसा सुन्दर बच्चा है! अभी-तक आँखे नहीं खुलीं।—आहा, बच्चेने सर्दी और धूपमे बड़ा कष्ट पाया है। बेटा मेरे!—हूँ–अब टुकर टुकर देखने लगे! आहा! आँखें क्या हैं, नीले कमल हैं!

राज०—औरगजेब! तुम दिल्लीके सिंहासनपर बैठे एक निरीह बालककी हत्या करनेके लिए व्यग्र हो रहे हो, और तुम्हारी ही जातिका यह कासिम उसे प्राण देकर भी बचानेके लिए तैयार है!—ईश्वरकी दृष्टिमें कौन बड़ा है औरंगजेब?

रानी—राना! मै इस भारी अत्याचारका बदला लूँगी!—इसका बदला चुकानेके लिए ही मैं उस दिन और स्त्रियोंके साथ नहीं जल मरी। इसीके लिए अबतक जिन्दा हूँ।—आप केवल इस बच्चेकी रक्षा कीजिए!

राज०—मैं कह चुका हूँ, इसके लिए कोई चिन्ता नहीं है महामाया! तुम अपने लडकेको लेकर यहाँ बेखटके रहो ।

रानी—नहीं राना ! मैं यहाँ नहीं रहूँगी । अब यह मेरा घर नहीं है । मैं अपने स्वर्गवासी स्वामीके राज्यको लौट जाऊँगी । संपत्ति और विपत्तिमें, सुख और दुःखमें, शान्ति और अशान्तिमें, जीवन और मरणमें स्वामीका घर ही स्त्रीका घर है, पिताका घर नहीं । मैं मारवाड़ चली जाऊँगी ।

राज०—किन्तु वहाँ तो अभी तुम बेखटके नहीं रह सकतीं बहन!

रानी—बेखटके ! मैं क्या यहाँ अपने लिए बेखटके जगह खोजने आई हूँ ? नहीं राना, मैं उसे नहीं खोजती । मै अब आपत्तिको खोजती हूँ । आपत्तिकी गोदमे मैं पली हूँ, भूकम्पमें मेरा जन्म हुआ है, तूफानमें मेरा घर है, प्रलयके बादलोंमें मेरी सेज है ।—विपत्ति !—विपत्तिको तो मैंने अपनी सखी बना लिया है राना ! मुझे अब और क्या विपत्ति होगी! पति मारा गया, पुत्र मारा गया, सर्वस्व लुटा गया—अब और क्या विपत्ति होगी ! राना, मेरे लिए अब एक ही विपत्ति और हो सकती है—इस बच्चेकी हत्या । इसकी रक्षा कीजिए राना! और कुछ न चाहिए, इसकी रक्षा कीजिए! मैं मारवाड़ जाऊँगी ! आग सुलगाऊँगी—आग! ऐसी आग सुलगाऊँगी, जिसमें औरंगजेब क्या चीज है, सारा मुगलोंका राज्य जलकर खाकमें मिल कर उड़ जायगा !

[पर्दा गिरता है ।]

दूसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—दिल्लीके महलके भीतरका बाग।

समय—सन्ध्याकाल।

[औरंगजेबकी पोती—अकबर शाहजादेकी लडकी—रजिया अकेले इधर उधर गाती हुई टहलती है।]

हे दिनमणि, तुम अपनी सारी गरिमा लेकर चले कहाँ ?
अजी ले चलो साथ मुझे भी, जाते हो जिस जगह वहाँ॥
अंधकार हो जब तब जगमें रहना चाहे कौन भला ?
जो चाहे सो पडा रहे, मैं रहना चाहूं नहीं यहाँ॥
सागरमें तूफान बीच आशाकी तोंबी बाँध हिये।
पडे रहें वे जो जानें जीना ही सुख है बडा यहाँ॥
जबतक जीवन रहे, रहूँ मैं सुखसे, बस अभिलाष यही।
सुखका समय समाप्त हुए पर मैं चल दूँ सब छोड यहाँ॥

[पासके एक मौलसिरीके पेड पर एक कोयलका शब्द और रजियाका एकाग्र होकर उसे सुनना। इसी समय गुलनारका प्रवेश।]

गुल०—रजिया।

रजिया—चुप रहो!—कोयल बोल रही है।

गुल०—कैसी पागल लडकी है! कोयलकी आवाज और कभी नहीं सुनी ?

रजिया—सुनी क्यों नहीं। लेकिन सुन चुकी हूँ, इसलिए क्या फिर न सुनना चाहिए ?—यह सुनो! फिर—चुप हो रही! क्यो

अम्मीजान! यह दुनिया अगर एक कभी न थमनेवाली 'तान' होती तो अच्छा होता न?

गुल०—अच्छा होता?—ऐसा होता तो नाकमें दम होता। एक बात भी कहनेका मौका न मिलता।

रजिया—बात!—बातके मारे ही नाकमें दम है अम्मीजान! और फिर उसके समझनेमें तो और भी आफत है! हरएक बातके पीछे उसके माने लगे हैं। क्या कहूँ! बगैर माने दो कदम भी आगे बढ़ना गैर मुमकिन है। बातके साथ ही साथ माने घूमते हैं।

गुल०—और गाना?

रजिया—माने लगाना—समझना बड़ा कठिन है। वे सिर्फ एक उदासी मनमें ला देते हैं। उनका समझना सहल नहीं है। यही जैसे 'बेला, चमेली, चपा, नेवारी।' इसके माने अच्छी तरह समझमे आते हैं—क्यो न?—बेला, चमेली, चपा, नेवारी, ये चार फूल। लेकिन (विकृत स्वरसे गलेबाजी करके) 'बेला, चमेली, चपा, नेवारी'—इसके माने लगाओ!

गुल०—बेशक—इसके माने लगाना मुश्किल है। बहुत ही अच्छी तान है!

रजिया—नहीं अम्मीजान! तुमको गाना बिल्कुल पसंद नहीं, यह मैं जानती हूँ। लेकिन मैं गानेकी तानमे डूब रही हूँ, मगन हूँ, शराबोर हूँ। (स्वरमें गुनगुनाकर) 'बेला-चमेली-चंपा नेवारी'।

गुल०—रजिया, तूने गाना किससे सीखा?

रजिया—अब्बाजानके उस्तादसे। अब्बाजानको गाना गाने और सुननेका बड़ा शौक है। अब्बाजानने खुद भी कुछ गाने बनाये हैं।

उस्तादजीने उनके सुर ठीक कर दिये है। अब्बाजानको पुरवी रागिनि बहुत पसंद है। बहुत ही मीठी रागिनी है! (पुरवीके सुरोंमें) "त रे ना तूम तूम तूम ना टे रे तूम"—वाह कैसी मीठी रागिनी है!

गुल०—मुरव्वेसे भी?

रजिया—अम्मीजान! तुम एकदम एक जनावर हो! एक गधेमे जितनी सुरकी जानकारी होती है—उतनी भी तुममे नहीं है।—अच्छा अम्मीजान, ये गधे क्या वेसुरे रेकते है! नीचेके गाधारसे एकदम ऊपरका कोमल ऋषभ होता है।

गुल०—होगा!

रजिया—अच्छा अम्मीजान! कोयलका सुर इतना मीठा क्यों है, और कौएकी आवाज इतनी कर्कश क्यों है? मुझे जान पडता है, कोयलके सुरसे ही गाना ईजाद हुआ है। सा, रे, गा, मा, पा,—ठीक कोयलका सुर है।—यह सुनो—कु, कु, कू, कू, कू—ठीक कोयलका सुर!

गुल०—वगालमें रहनेसे तुझे गानेकी सनक सवार हो गई है। ...लमें शायद गाने-वजानेका वडा चलन है?

रजिया—हाँ। मगर वगाली लोग 'कीर्त्तन' वहुत गाते हैं। मैंने कीर्त्तन सीखा है—सुनोगी? सुनो—

वँधुया कि आर कहिव आमि!
जीवन मरने, जनमे जनमे, प्राननाथ हैयो तुमि।
तोमार चरने अमार पराने लागिल प्रेमे फाँसि,
मन प्रान दिये मव समर्पिये निश्चय हईनू दासी।
एकुले ओकुले दुकुले गोकुले के आर आमार आछे,
राधा वोले आर शुधाइते नाम दाडावे आमार काछे।

—इसके बाद भूल गई ।—अच्छा है! क्यों?—अच्छा अम्मी-जान! दादाजी गानेसे इतने चिढ़ते क्यों है?—वे मुझे खूब प्यार करते हैं। लेकिन अगर कभी एक तान ले लेती हूँ—तो—मेरी तरफ देखकर कहते हैं—"ऐ!" और सिर हिलाते है।

गुल०—तेरे दादाजान तुझे बहुत प्यार करते हैं?

रजिया—ओह! बहुत प्यार करते है! (सुरसे) "बँधुया—" तुमको प्यार करते हैं?

गुल०—मुझको?—अपने दादाजानसे जरा पूछ कर देखना।

रजिया—(सुरसे) "कि आर कहिब आमि—" तुम जो करनेको कहती हो वही करते हैं?

गुल०—करते हैं। देखती नहीं है कि मेरे वास्ते एक जग ही ठन गया है।

रजिया—जग!—जंग किसे कहते हैं अम्मीजान!

गुल०—लडाई!

रजिया—ओह!—एक आदमी एक तरवार लेता है, और दूसरा आदमी दूसरी तरवार लेता है। उसके बाद दोनों आदमी बाजेकी ताल पर नाचते और घूमते हैं—यह मैंने बगालमें देखा है। लडाई किसके साथ होगी अम्मीजान!

गुल०—मेवाडके साथ।

रजिया—मेवाड़ मर्द है या औरत?

गुल०—दुर पगली लडकी!—मेवाड एक मुल्क है।

रज़िया—बापरे! एक मुल्कके साथ लडाई होगी!—क्यों अम्मी-जान, लडाई क्यों होगी?

गुल०—एक रानीको पकड़कर लानेके लिए।

रजिया—तुमने शायद दादाजानसे यही कहा है ?

गुल०—हाँ !

रजिया—उस रानीको पकड मँगाकर क्या करोगी ? उसे प्यार करोगी ?

गुल०—उसके मुर्देका जुलूस निकालूँगी।

रजिया—उसके जीतेजी ? मैंने तो सुना है, मरनेपर मुर्देका जुलूस निकलता है।—लो वे दादाजान और अब्बाजान आ रहे हैं।—मजा देखोगी ?

[औरंगजेब और अकबरका प्रवेश।]

रजिया—(कीर्तनके स्वरमें) "बँधुया—"

औरंग०—ऐं—रजिया !—फिर !

रजिया—लो अम्मीजान यह सुनो—हाः हाः हाः—

(हँसते हँसते भाग जाती है।)

औरंग०—अकबर ! मैंने तुमको बंगाल भेजा था, सल्तनतका [illegible] सीखनेके लिए; लेकिन मैं देखता हूँ, तुम नाच–गानमें मशगूल रहते हो। इस लडकी तकको गाना सिखा दिया है !—[illegible] मालूम न था कि तुम ऐसे नालायक हो।

गुल०—सच बात है। लडकी गानेके सिवा और बातही नहीं [illegible]। दिनरात गुनगुनाया करती है। नाकमें दम कर रक्खा है !

औरंग०—उसकी जिन्दगी बरबाद किये देते हो। खैर, यह फिर देखा जायगा।—इस वक्त अकबर, तुम मेवाडकी लडाईमें जाओ। मैं तुम्हारी मातहतीमें ५०००० फौज भेजता हूँ। मेवाड़ पर चढाई करो

अकबर—जो हुक्म।

औरंग०—मैंने सुना है, तुम बहुत ही सुस्त, शौकीन और ऐयाश हो गये हो । तुम्हें कुछ जिन्दगीकी सख्तियाँ झेलनेकी जरूरत है । मेवाडकी लड़ाईमें जानेके लिए ही मैंने तुमको नहीं बुला भेजा है, तुम्हारा सुधार करनेके लिए ही खासकर बुलाया है । जाओ—तैयारी करो । सिपहसालार दिलेरखाँको तुम्हारी मददके लिए भेजता हूँ । मै और आजिम दोनों 'दोवारी' मे ठहरकर तुम्हारी फतेहकी राह देखेंगे । —जाओ । (अकवरका चुपचाप प्रस्थान ।)

औरंग०—गुलनार ! तुम्हारे कहनेसे, तुम्हें खुशी करनेके लिए आज मैं एक बडी भारी लडाई छेड़ रहा हूँ ।

गुल०—भारी लडाई !—एक छोटेसे मुल्क मेवाड़से भिड़ना बड़ी भारी लड़ाई है !—मैं तो समझती हूँ, हिन्दोस्तानके शाहंशाह औरंग-जेबके लिए यह एक बहुत मामूली बात है !

औरंग०—यह बात नहीं है बेगम ! जिस दिन ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंको फौजको रौंदकर चले गये उस दिन मैंने जाना कि राजपूतोंकी जात बड़ी दिलेर है—राजपूतोंकी ऐसी हिम्मत और बहादुरी दूसरी कौममें नहीं है । इसीसे मैंने इस चढ़ाईके लिए बगा-लसे शाहजादा अकबर और काबुलसे शाहजादा आजिमको बुला भेजा है ।—मेवाडपर फतेह पाना बहुत ही सहल और आसानीसे हो जानेवाला काम नहीं है ।

गुल०—मैं मेवाड़को जीतना नहीं चाहती । मैं जसवन्तकी रानीको चाहती हूँ, और कुछ नहीं । उससे एक दफा मुलाकात करनी चाहती हूँ ।

औरंग०—अबकी जरूर मुलाकात होगी ।—भीतर चलो गुलनार ! पानी पड़ने लगा । (दोनोंका प्रस्थान ।)

दूसरा दृश्य।



स्थान—आबू पहाडकी कन्दरा।

समय—दोपहर।

[दुर्गादास और दो राठौर सामन्त—शिवसिंह और मुकुन्दसिंह।]

दुर्गा०—शिवसिंह ! और मुकुन्दसिंह ! मै कुॲरको तुम्हारी देख-रेखमे छोड़े जाता हूँ। इस स्थानके अस्तित्वकी भी खबर किसीको न होने पावे।

दोनो—ऐसा ही होगा सेनापति।

दुर्गा०—बादशाहने बड़ी भारी फौज लेकर मेवाड पर चढाई की है। कुॲरको अब उदयपुरमे रखना ठीक न समझकर रानाजीकी आज्ञाके अनुसार यहाँ ले आया हूँ।

मुकुन्द०—बादशाहने मेवाड़ पर चढाई क्यों की है ?

दुर्गा०—मेवाडने जोधपुरकी रानी और राजकुमारको आश्रय दिया है; बस यह इसका प्रधान कारण है। यह भी सुना है कि औरंगजेबके अत्याचारका—खास कर हिन्दुओके ऊपर जिजिया कर लगानेका—तिवाद करके रानाने जो पत्र लिखा था वह पत्र ही इसका कारण है। पर ० एक बहाना है। उस पत्रकी लिखावटमे तेज और निडरपनकी झलक ने पर भी नम्र और सरलताकी मात्रा यथेष्ट थी। उससे बादशाहके न होनेका कोई कारण न था। मैने उस पत्रको पढा है।

शिव०—आप इस युद्धमें जा रहे है ?

दुर्गा०—मेरे प्रभुको आश्रय देनेके कारण ही यह युद्ध ठना है। मेरे यहाँ निश्चिन्त होकर बैठ रहनेसे काम नहीं चल सकता शिवसिंह ! तुम दोनों इस किलेमें रहो। यहाँसे कहीं न जाना। यह किला बहुत ही एकान्त

और बहुत ही गुप्त है। यहाँ किसी तरहका खटका नहीं है। तब भी इस किलेमें पहरा देनेके लिए २०० सिपाही छोड़े जाता हूँ। अगर किसी विपत्तिकी सभावना भी हो, तो उसी घड़ी मुझे खबर देना।

मुकुन्द०—बादशाह क्या मेवाड पर चढाई करनेके लिए रवाना हो चुके हैं?

दुर्गा०—हाँ। बादशाहकी फौज टीड़ी-दलकी तरह मेवाड़-राज्यमे छाई हुई है। चित्तौर, मण्डलगढ, मन्दसोर और जीड़नके किलोंको बादशाहने ले लिया है। राना अपनी सब सेना पहाड़ी जगह पर ले आये हैं।

शिव०—हमारी महारानी कहाँ है?

दुर्गा०—मारवाड़में। उन्होंने सेनापति गोपीनाथकी अध्यक्षतामे १०००० राठौर-सेना मेवाड भेजी है। खुद और भी सेना जमा करके अपने साथ लिये आ रही हैं।—अच्छा जाओ, तुम लोग भोजन आदि करो। (मुकुन्दसिंह और शिवसिंहका प्रस्थान।)

दुर्गा०—(आप ही आप) आज मुट्ठीभर राजपूत-सेना लेकर मुगल सेनाके सागरमें उतरता हूँ। ईश्वर जाने, इसका परिणाम क्या होगा! एक आशा यही है कि मेवाड और मारवाड़ आज मिलकर—प्राणोंकी पर्वा न करके—इस युद्धके लिए तैयार हैं। चारो ओर घिरी हुई घनी घटाके अन्धकारमे इतनी ही ज्योतिकी क्षीण रेखा देख पडती है।—यदि इसके साथ ही एक वार मराठा-शक्तिकी सहायता पाता! इस बिखरी हुई हिन्दुओंकी शक्तिको यदि एकबार जमा कर पाता!—कैसी अद्भुत जाति है! तीस वर्षके बीचमे एक जाति संगठित हो गई!

[कासिमका प्रवेश ।]

दुर्गा०—क्यों कासिम ! कुअँर कहाँ है ?

कासिम—अभीतक मेरे साथ खेल रहा था । अभी सो गया है। धायके पास छोड़ आया हूँ । अब मै नहाने-खाने जाऊँ न ?

दुर्गा०—(हँसकर) हाँ, तुम तो नहाकर खानेके बारेमें हिन्दुओंसे भी कट्टर हो । जाओ, नहाओ खाओ जाकर—देर हुई है ।

कासिम—और आप न नहाएँ-खाएँगे ?

दुर्गा०—नहीं, आज मेरी तबीयत अच्छी नहीं है ।

कासिम—यही तो आपमें ऐब है । नहीं तो आप आदमी बुरे नहीं है ।—यही तो ऐब है !

दुर्गा०—हाँ, यह मुझमे दोष है !

कासिम—मेरी बीबीमें भी यही ऐब था । आज खाँसी है, कल बुखार है, परसों दर्द है । मगर मुझमें यह बात नहीं है । बुखार आगया तो आगया, नही तो अच्छा खासा रहता हूँ । खाता—पीता हूँ—और मजेमे काम करता हूँ ।

दुर्गा०—तुम्हारी स्त्रीकी मौत कैसे हुई कासिम ?

कासिम—अरे ! कौन जाने ! एक दिन सबेरे उठकर देखा, मरी पडी है । हकीमने कहा, कलेजेकी बीमारी थी ।

दुर्गा०—और तुम्हारा लडका ?

कासिम—मेरे लडकेकी बात न कहिए हुजूर । बहुत ही खूबसूरत और मोटा-ताजा था । उसे देखकर भूख-प्यास हर जाती थी। उसका चलना फिरना अँधेरेमें 'दिये'के समान, बोलचाल बाँसुरीकी तानके समान और हँसी नदीकी लहरोंके सामन जान पड़ती थी । ठीक अपने राजकुमारके ऐसा था । हाँ, रंग उसका इतना गोरा न था ।

एक दिन मैं कामसे लौटकर घर आया तो देखा, बच्चा पडाहुआ है । वदन भरमें जैसे किसीने स्याही फेर दी थी । पूछा, क्या हुआ । कुछ जवाब नहीं मिला । चाचीको बुलाया, वह देखकर रोने लगी ! हकीमको बुलाया, वह सिर हिलाकर चला गया ।

दुर्गा०—क्या हुआ था ?

कासिम—अरे यही तो माऌम नहीं हुआ । उसके बाद ही मुल्कमे एक तरहकी बामारी फैल गई, उसे लोग काला बुखार कहते थे । धडाधड लोग मरने लगे ! बदनसीबीसे मैं नहीं मरा । (कासिमका ऑसू पोंछना ।)

दुर्गा०—ससारका यही नियम है कासिम !—तुम क्या करो । जाओ—नहाओ-खाओ ।

कासिम—जाता हूँ । (प्रस्थान ।)

दुर्गा०—इस मुसलमानके साथ बतचीत करनेसे मन पवित्र होता है, सीधी सहज राहमे चलना आसान हो जाता है, ईश्वरकी भक्ति बढती है !

तीसरा दृश्य ।

स्थान—जयसिंहकी स्त्री कमलादेवीके सोनेके कमरेका बरामदा ।

समय—रात ।

[कमला दीवारसे लगी हुई बैठी है । उसके मुँहपर चॉदनीका प्रकाश पड रहा है । पास ही थोडी दूर पर हथेली पर गाल रक्खे, आधे लेटे हुए जयसिंह एक-टक कमलाकी ओर निहार रहे है ।]

जयसिंह—कैसी सुन्दर रात है कमला !

कमला—बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर है, बहुत सुन्दर है—लो निर्वाचक कह दिया! अब माना!

जयसिंह—प्रिये!

कमला—प्रियतम! प्राणनाथ!

जयसिंह—ना मुझे, कुछ नहीं कहना है! तुम इसी तरह बैठी रहो, मैं आँखोंसे तुम्हारे सौन्दर्यकी मदिरा पियूँ।

कमला—देखो, कहीं एक ही घूँटमें सब न पीजाना, मेरे लिए भी कुछ रहने देना।

जयसिंह—कमला! सौन्दर्य अवश्य मदिरा है! नहीं तो देखते ही देखते यह नशा कहाँसे चढ आता है? सब अंग शिथिल क्यों हो आते हैं? आँखें क्यों बंद हो आती है?

कमला—तुम्हारी हालत शायद ऐसी हो जाती है!—मेरे तो ठीक इससे उल्टा होता है। तुमको देखते ही मेरा नशा मानो उतर जाता है।

जयसिंह—तो तुम मुझे प्यार नही करती।

कमला—(कटाक्ष करके) नहीं प्यार करती—अच्छा, अच्छी बात है—नहीं प्यार करती।

जयसिंह—शायद प्यार करती हो। किन्तु मैं जिस तरह शरीरके रोएँ रोएँसे, हृदयके सारे रक्तसे, जीके सारे जोशमें, इह लोक—परलोक सब कुछ समझकर, तुमको प्यार करता हूँ—उसी तरह प्यार करती हो?

कमला—हाँ प्यार करती हूँ! लेकिन इस तरहकी कविता मुझे नहीं कर आती।

जयसिंह—नहीं कमला! इतनी सहृदय—ताइतना हृदय तुम्हारे नहीं है।

कमला—न होगा। मगर तुम्हारी नाकमें रस्सी डालकर तुमको नचाती तो हूँ!

जयसिंह—हाँ घुमाती हो। जबसे तुमको व्याह कर लाया हूँ प्रिये, तबसे मैं दुनियाको नये ही ढगसे देख रहा हूँ।

कमला—क्यों!—देख रहे हो कि नहीं?

जयसिंह—देख रहा हूँ।—जैसे एक अविराम झनकार, जैसे एक अनन्त विश्राम, जैसे एक असीम मोहमें पड़ा हूँ; जैसे न सोता हूँ और न जागता ही हूँ।

कमला—जैसे अफीम खानेसे होता है? क्यों? मैंने अपनी दादीके मुँहसे सुना है।

जयसिंह—मैं उस अपनी अवस्थाको कहकर समझा नहीं सकता। —जैसे एक आकाक्षा है, पर काहेकी आकाक्षा है सो कुछ समझमे नहीं आता। हंसी ओठोमें खिल उठती है, मगर देख नहीं पड़ती। जैसे गीतकी तान ऊपर चढ़कर लीन होजाती है। जैसे एक प्रकारका बाधाहीन सुखका स्वप्न, अथाह सौन्दर्य, अनन्त तृप्ति हो।

कमला—क्यों! पहली रानीमें भी यह बात थी?—लो, नाम लेते ही वे पहली रानी आगई!

[सरस्वतीका प्रवेश।]

सरस्वती—आप यहाँ हैं स्वामी! मैं आपको बड़ी देरसे खोजती फिर रही हूँ!

जयसिंह—क्यों सरस्वती?

कमला—तो अब तुम पहली रानीसे बातचीत करो—मैं जाती हूँ।

(प्रस्थान।)

जयसिंह—नहीं, जाओ नही, सुनो!

(उठकर खड़े हो जाना।)

सरस्वती—मैं तुम्हारे सुखमे विघ्न डालने नहीं आई स्वामी !—कुछ विशेष प्रयोजन है।

जयसिंह—क्या प्रयोजन है ?

सरस्वती—स्वामीका स्त्रीसे क्या यही उचित प्रश्न है प्राणनाथ! खैर उस बातको जाने दो! मै इस समय तुमसे जबर्दस्ती प्यार उगाहने नहीं आई हूँ—यद्यपि उस पर कमलाकी तरह मेरा भी दावा है। जाने दो—जो गया, वह गया।

जयसिंह—क्या प्रयोजन है ?

सरस्वती—बडी जल्दी है ? अच्छा सुनो ! मुगलोने मेवाड पर चढ़ाई की है, सुना है ?

जयसिंह—नहीं।

सरस्वती—तो तुम्हारे पिताने तुमको यह खबर देनेकी जरूरत नहीं समझी।

जयसिंह—सो उन्होंने समझदारीका काम किया।

सरस्वती—उन्होने इस युद्धमे शामिल होनेके लिए बडे राजकुमारको जोधपुरसे बुला भेजा है।

जयसिंह—अच्छा किया। फिर ?

सरस्वती—यह सुनकर तुमको लज्जा नहीं आई ? तुम क्षत्रिय हो, राजपूत हो, मेवाडके होनेवाले राना हो ! रानाने तुमको मेवाडपर चढाई होनेकी खबर भी नहीं दी, और बडे लडकेको इतनी दूर जोधपुरसे बुला भेजा। इससे क्या प्रकट होता है स्वामी ?

जयसिंह—क्या प्रकट होता है ?

सरस्वती—इससे यह प्रकट होता है कि राना तुमको कायर और नालायक समझते है। जोधपुरसे दुर्गादास, रूपनगरसे विक्रम सोलंकी

राठौर-वीर गोपीनाथ—सब मेवाडकी सहायता करनेके लिए आये है। वे सब इस समय रानाके सलाह-घरमे है। और तुम मेवारके होने-वाले राना होकर भी रंग-महलमें बैठे प्रेमका स्वप्न देख रहे हो! सुनकर लाज नहीं लगती? खूनमे जोश नहीं आता? अपनेको धिक्कार देनेकी इच्छा नहीं होती?—क्या! चुप रह गये!

जयसिंह—सब समझता हूँ। किन्तु सरस्वती!—किसीने जैसे मेरे जोशको मिटा दिया है—मेरे खूनको ठडा कर दिया है। मुझे स्त्रीसे भी अधम बना दिया है।

सरस्वती—अगर इतनी समझ बाकी है तो अब भी आशा है स्वामी! कमलाको चाहो। यह अनुचित नहीं है।—लेकिन जब विजातीय शत्रुओंकी सेनाने आकर देशको घेर लिया है, शत्रु द्वार पर है, कठोर कर्त्तव्य सामने है, तब स्त्रीके अधरामृतको पीनेमें ही समय बिताना क्षत्रियका काम नहीं है।

जयसिंह—सच है सरस्वती! तुम सदासे उचित, सत्य, संगत बात कहती आरही हो—पर उसे मैं सुनना नहीं चाहता। कर्त्त-व्यके मार्गको पहचानता हूँ, मगर उस राहमें चल नहीं सकता।

सरस्वती—अगर कर्त्तव्यकी राहको पहचानते हो तो उठो, एकबार प्राणपणसे चेष्टा करके इस विलासको फटे-पुराने कपड़ेकी तरह, हृदयसे दूर कर दो स्वामी! कर्तव्य-पथ पर चलना सहज जान पडेगा। मेरे कहनेसे एक बार कर्त्तव्यकी ओर बढो, वह आप हाथ बढाकर तुमको अपनी ओर खींच लेगा—वह तुमको अपने घेरेमे रखकर तुम्हारी रक्षा करेगा। कर्त्तव्यको तुम जितना कठिन समझते हो, उतना कठिन वह नहीं है! एकबार हिम्मत करके उद्योगके सहारे अपने पैरों उठकर खड़े हो जाओ स्वामी!

जयसिंह—तुम ठीक कहती हो सरस्वती! अच्छी बात है! एक बार चेष्टा करके देखूँ।—क्या करनेको कहती हो सरस्वती!

सरस्वती—यही मेरे स्वामीके योग्य बात है।—तो सुनो प्राण-नाथ! आओ—वीरोंका वेष धारण करो। इसके बाद अपने पिताके पास जाओ। वहाँ जाकर अपने पितासे कहो—"इस युद्धमें मुझे किसीने बुलाया नहीं; मैं आपसे आया हूँ।" तुम्हारे पिता गर्व और स्नेहके साथ वीरपुत्र समझ कर तुमको गलेसे लगा लेगा; सारा मेवाड़ अभिमानके साथ कहेगा—यही तो हमारे होनहार राना हैं! सारा राजपूताना सिर ऊँचा करके उस दृश्यको देखेगा।—स्वामी! धिक्कारके साथ बहुत दिन जीनेकी अपेक्षा पूज्य और प्रशंसनीय होकर एक दिनका जीना भी सुखदायक है।

जयसिंह—सरस्वती! मैं इसी घडी जाता हूँ।

सरस्वती—हाँ, इसी घडी चलो। मैं अपने हाथसे तुमको फौजी पोशाक पहना दूँ! चलो। (जयसिंहका प्रस्थान।)

सरस्वती—जाओ स्वामी इस युद्धमे! मेरा सच्चा स्नेह अभेद्य कवचकी तरह तुम्हारी रक्षा करेगा। शत्रुकी तरवार तुम्हे छू भी न सकेगी। (पीछे पीछे सरस्वतीका भी प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान—उदयपुर। राना राजसिंहका सलाह-घर।

समय—आधी रात।

[राना राजसिंह, महारानी महामाया, दुर्गादास और अन्यान्य सामन्त बैठे हैं।]

विक्रम सोलंकी—हम लोग सम्मुख-युद्ध करके मुगल-सेना पर धावा करेंगे।

राजसिंह—यह तो ठीक नहीं जान पडता। खुले मैदानमे, असख्य मुगल-सेनाके सामने खडा होना युक्तिसंगत नहीं है।

गोपीनाथ—मैं कहता हूँ—थोडी सेनाकी अनेक टुकडियॉ वनाई जायँ। वे मुगलोंकी सेनाको परेशान करके आगे वढने न दें।

राजसिंह—तुम्हारी क्या सलाह है गरीबदास! तुम इस पहाड़ी जगहकी हरएक राह, उपत्यका और जगलको जानते हो।—तुम्हारी क्या राय है?

गरीवदास—मैं कहता हूँ, मुगलोंको इस पहाडी राहमें आने दो। हम लोग उन्हें रोकनेकी कुछ भी चेष्टा न करेंगे। केवल कौशलसे उनको सबसे तग पहाड़ी दर्रेमें ले आवेंगे। वहॉ मोर्चेबन्दी करना उनके लिए कठिन होगा। पहाड़ी तग राहमें शत्रुसेनाकी शृखला टूट जाने पर हम लोग उन पर आक्रमण करेंगे।

दुर्गादास—यह वहुत ही अच्छा उपाय है रानासाहव! मुगलोंके साथ केवल आज ही नहीं—वहुत वर्षों तक अभी युद्ध करना होगा;—जहॉ तक हो, हमें इस पर दृष्टि रखनी होगी कि हमारी शक्तिका अपव्यय न हो।

गोपीनाथ—इस सलाहको मै भी पसन्द करता हूँ।

विक्रम—वहुत ठीक है! वहॉ पर शत्रु दल वॉधनेका सुयोग न पा सकेंगे।

राजसिंह—सवकी क्या यही सलाह है? तुम क्या कहती हो महामाया!

रानी—जो सवकी सलाह है वही मेरी सलाह है। लेकिन वादशाह खुद इस युद्धमें नहीं आये?

जयसिंह—तुम ठीक कहती हो सरस्वती ! अच्छी बात है ! एक बार चेष्टा करके देखूँ !—क्या करनेको कहती हो सरस्वती !

सरस्वती—यही मेरे स्वामीके योग्य बात है।—तो सुनो प्राणनाथ ! आओ—वीरोका वेप धारण करो। उसके बाद अपने पिताके पास जाओ। वहाँ जाकर अपने पितासे कहो—"इस युद्धमें मुझे किसीने बुलाया नहीं; मैं आपसे आया हूँ।" तुम्हारे पिता गर्व और स्नेहके साथ वीरपुत्र समझ कर तुमको गलेसे लगा लेगा, सारा मेवाड़ अभिमानके साथ कहेगा—यही तो हमारे होनहार राना हैं ! सारा राजपूताना सिर ऊँचा करके उस दृश्यको देखेगा।—स्वामी ! धिक्कारके साथ वहुत दिन जीनेकी अपेक्षा पूज्य और प्रशंसनीय होकर एक दिनका जीना भी सुखदायक है।

जयसिंह—सरस्वती ! मैं इसी घडी जाता हूँ।

सरस्वती—हाँ, इसी घड़ी चलो। मैं अपने हाथसे तुमको फौजी पोशाक पहना दूँ ! चलो। (जयसिंहका प्रस्थान।)

सरस्वती—जाओ स्वामी इस युद्धमें ! मेरा सच्चा स्नेह अभेद्य कवचकी तरह तुम्हारी रक्षा करेगा। शत्रुकी तरवार तुम्हे छू भी न सकेगी। (पीछे पीछे सरस्वतीका भी प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान—उदयपुर। राना राजसिंहका सलाह-घर।

समय—आधी रात।

[राना राजसिंह, महारानी महामाया, दुर्गादास और अन्यान्य सामन्त बैठे है।]

विक्रम सोलकी—हम लोग सम्मुख-युद्ध करके मुगल-सेना पर धावा करेंगे।

राजसिंह—यह तो ठीक नहीं जान पडता। खुले मैदानमे, असंख्य मुगल-सेनाके सामने खडा होना युक्तिसंगत नहीं है।

गोपीनाथ—मैं कहता हूं—थोड़ी सेनाकी अनेक टुकडियाँ बनाई जायें। वे मुगलोंकी सेनाको परेशान करके आगे बढ़ने न दें।

राजसिंह—तुम्हारी क्या सलाह है गरीबदास! तुम इस पहाड़ी जगहकी हरएक राह, उपत्यका और जगलको जानते हो।—तुम्हारी क्या राय है?

गरीबदास—मैं कहता हूँ, मुगलोंको इस पहाडी राहमें आने दो। हम लोग उन्हें रोकनेकी कुछ भी चेष्टा न करेंगे। केवल कौशलसे उनको सबसे तग पहाड़ी दर्रेमें ले आवेंगे। वहाँ मोर्चेबन्दी करना उनके लिए कठिन होगा। पहाडी तग राहमें शत्रुसेनाकी शृंखला टूट जाने पर हम लोग उन पर आक्रमण करेगे।

दुर्गादास—यह बहुत ही अच्छा उपाय है रानासाहब! मुगलोंके साथ केवल आज ही नहीं—बहुत वर्षों तक अभी युद्ध करना होगा;—जहाँ तक हो, हमें इस पर दृष्टि रखनी होगी कि हमारी शक्तिका अपव्यय न हो।

गोपीनाथ—इस सलाहको मैं भी पसन्द करता हूँ।

विक्रम—बहुत ठीक है! वहाँ पर शत्रु दल बाँधनेका सुयोग न पा सकेंगे।

राजसिंह—सबकी क्या यही सलाह है? तुम क्या कहती हो महामाया!

रानी—जो सबकी सलाह है वही मेरी सलाह है। लेकिन बादशाह खुद इस युद्धमें नहीं आये?

राजसिंह—नहीं, वह और आजिम 'दोवारी' में है। बादशाहके पुत्र अकबर उदयपुरमें आये हैं;—यही तो ठीक खबर है न दुर्गादास

दुर्गादास—हाँ महाराना! शत्रुकी सेना तीन भागोंमे बँटी हुई है एक अकबरकी मातहतीमे उदयपुरकी राहमे, एक दिलेरखाँकी मातहतीमे 'दासुरी' की राहमें, और एक बादशाहकी मातहती 'दोवारी'मे।

रानी—मै कहती हूँ, हम लोग सेनासहित बादशाह पर धावा कर दे

राज०—नहीं। ऐसा करनेसे अकबरकी सेना पीछे रह जायगी। यह ठीक नहीं। क्यों दुर्गादास?

दुर्गा०—हाँ, यह ठीक न होगा।

राज०—तो फिर गरीबदासकी सलाह सबको पसद है?

सब०—हाँ, सबको पसन्द है।

राज०—अच्छी बात है! अब इस सम्मिलित सेनाका सेनापति किसे बनाना चाहिए?

गरीब०—क्यों, दुर्गादासको।

राज०—यही सबकी सलाह है?

सब०—(रानी और दुर्गादासके सिवा) जी हाँ।

राज०—तो दुर्गादास! मैं तुमको इस सम्मिलित राजपूत-सेनाका सेनापति बनाता हूँ।

दुर्गा०—मै आपके दिये हुए इस सम्मानको सादर ग्रहण करता हूँ वह देखिए, कुमार भीमसिंह भी आगये।

[भीमसिंह प्रवेश करके रानाको प्रणाम और सबसे यथोचित शिष्टाचार करते हैं।]

राज०—आओ बेटा—तुमको शायद 'आओ' कहनेका भी मुझे अधिकार नहीं है।

भीम०—क्यों पिताजी !

राज०—मैंने तुमको निकाल देनेकी नालायकी की है ।

भीम०—नहीं पिताजी, मैं अपनी इच्छासे निकल गया हूँ ।

राज०—मुझसे तुम नाराज नही हो भीमसिंह ?

भीम०—आपसे नाराज ! आपकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए मैं प्राण तक दे सकता हूँ । भगवान् श्री रामचन्द्र पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए वनवासी हुए थे । मै एक तुच्छ मनुष्य हूँ । किन्तु फिर भी मैं वही क्षत्रिय होनेका गर्व रखता हूँ ।

रानी—कुअँर, तुमको आज तुम्हारे पिताने बुलाया है जन्मभूमिकी रक्षा करनेके लिए ।

भीम०—यह मेरे लिए गौरवकी बात है महारानी !

विक्रम०—तुम अपनी जन्मभूमिको भूले नहीं भीमसिंह ?

भीम०—जन्मभूमिको भूलूँगा !—विक्रमसिहजी ! ये जो कई वर्ष मुझे विदेशमे बीते हैं, इनमें खाते-पीते सोते-जागते सदा यह धूमधूसर पहाडोंसे परिपूर्ण मेवाड-भूमि मेरी आँखोंके आगे नाचती रही है । आज उसी जन्मभूमिमें आते समय राहमें उन चिरपरिचित जंगली राहों, उपत्यकाओ और पर्वतमालाओंको देखकर मेरी आँखोंमें आँसू डबडबा आये; आवेशके मारे गला भर आया ।

रानी०—(स्वगत) ठीक राना राजसिंहका प्रतिबिम्ब है ।

[हथियारबन्द जयसिंहका प्रवेश ।]

राजा०—कौन ? जयसिंह !

जय०—हाँ पिताजी मैं हूँ ! पिताजीने मुझे इस युद्धमें सम्मिलित होनेके लिए नहीं बुलाया ।—मैं आप आया हूँ ।

राज०—(घड़ीभर बहुत ही विस्मयसे जयसिंहकी ओर देखकर) सच जयसिंह? निश्चय करके यह बात कह रहे हो?

जय०—हाँ पिताजी! आज मेवाड पर सकट है। मै मेवाडका होनहार राना हूँ। इस समय मेरा निश्चिन्त होकर घरमें बैठा रहना नहीं सोहता।

भीम०—चिरजीवी होओ भाई! यही तो तुम्हारे योग्य बात है।

राजा०—भीमसिंहको प्रणाम करो जयसिंह।

[जयसिंह भीमसिहको प्रणाम करते हैं और भीमसिंह उनको गलेसे लगाते है।]

राज०—दुर्गादास! मैं अपने इन दोनों पुत्रोंको तुम्हे सौंपता हूँ। ये तुम्हारी मातहतीमें युद्ध करेंगे।

दुर्गा०—यह मेरे लिए बडे ही सम्मानकी बात है रानासाहब!

राज०—अच्छा तो अब आज सभा विसर्जन करो। तुम सब लोग जाओ।—जाओ रानी, महलमे जाओ।

(राजसिंह और राजकुमारोंके सिवा सबका प्रस्थान।)

राज०—(कोमल स्वरसे) भीम!

भीम०—पिताजी!

(राजसिंह चुप रह गये।)

भीम०—समझा पिताजी! मै उस प्रतिज्ञाको भूला नही। मैं इसी ही मेवाडसे बाहर जाता हूँ। अच्छा चलता हू पिताजी! चलता हूँ!

(भीमसिंह रानाको प्रणाम और जयसिंहको आशीर्वाद करके शीघ्रताके साथ चल देते है।)

राजसिंह०—(घडीभर चुप रहकर) जयसिंह!—हो सके तो इस भाईके माफिक बनो।—जाओ बेटा, सोओ।

(जयसिंहका प्रस्थान।)

राजसिंह—(आप-ही-आप) भीम ! भीम ! मुझे तुम प्यार नहीं करते । जन्मभूमिकी बात कहते कहते तुम्हारा गला भर आया । और मुझे केवल एक सूखा प्रणाम !—अपने दोषसे ऐसे वीर पुत्रको मैंने खो दिया । (प्रस्थान ।)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—चित्तौरके पासका जगल, मुगलोकी छावनी ।

समय—तीसरा पहर ।

[सम्राट् औरंगजेब उत्तेजित भावसे खडे हैं । सामने दिलेरखाँ और शाहजादा आजिम खडे हैं । पास ही श्यामासिह खडे हैं ।]

औरं०—क्या दिलेरखाँ ! तुम भी इस लड़ाईमें हार आये ?

दिलेर०—हाँ जनाव ! सिर्फ हार ही नहीं आया, अपना सब कुछ गँवा आया ।

औरं०—और शाहजादा अकवर ?

दिलेर०—उनके वारेमें जो सुना है वह भी वहुत अच्छी खबर नहीं है । वे आरावली पहाडके दर्रेमें राना राजसिंहके लड़के जयसिंहके हाथ पडकर कैद हो गये है !

औरंग०—कैद !—अकवर—हिन्दोस्तानका होनेवाला वादशाह राजपूतके हाथ कैद !—अवकी मुगलोंकी पूरी वेइज्जती हो गई !

आजिम—(स्वगत), क्या ? हिन्दोस्तानका होनेवाला वादशाह अकवर !

दिलेर०—अव ज़हाँपनाह अपनी खवर वतावे, क्या है ? जहाँपनाहने 'दोवारी' छोड़कर चित्तौरके किलेमें पनाह ली है !

राज०—(घड़ीभर बहुत ही विस्मयसे जयसिंहकी ओर देखकर) सच जयसिंह ? निश्चय करके यह बात कह रहे हो ?

जय०—हाँ पिताजी ! आज मेवाड पर सकट है । मै मेवाडका होनहार राना हूँ । इस समय मेरा निश्चिन्त होकर घरमें बैठा रहना नहीं सोहता ।

भीम०—चिरजीवी होओ भाई ! यही तो तुम्हारे योग्य बात है ।

राजा०—भीमसिंहको प्रणाम करो जयसिंह ।

[जयसिंह भीमसिंहको प्रणाम करते हैं और भीमसिंह उनको गलेसे लगाते हैं ।]

राज०—दुर्गादास ! मै अपने इन दोनो पुत्रोको तुम्हे सौंपता हूँ । ये तुम्हारी मातहतीमें युद्ध करेंगे ।

दुर्गा०—यह मेरे लिए बड़े ही सम्मानकी बात है रानासाहब !

राज०—अच्छा तो अब आज सभा विसर्जन करो । तुम सब लोग जाओ ।—जाओ रानी, महलमे जाओ ।

(राजसिंह और राजकुमारोंके सिवा सबका प्रस्थान ।)

राज०—(कोमल स्वरसे) भीम !

भीम०—पिताजी !

(राजसिंह चुप रह गये ।)

भीम०—समझा पिताजी ! मै उस प्रतिज्ञाको भूला नही । मै इसी मेवाडसे बाहर जाता हूँ । अच्छा चलता हू पिताजी ! चलता हूँ !

(भीमसिंह रानाको प्रणाम और जयसिंहको आशीर्वाद करके शीघ्रताके साथ चल देते है ।)

राजसिंह०—(घड़ीभर चुप रहकर) जयसिंह !—हो सके तो इस भाईके माफिक बनो ।—जाओ बेटा, सोओ ।

(जयसिंहका प्रस्थान ।)

राजसिंह—(आप-ही-आप) भीम ! भीम ! मुझे तुम प्यार नहीं करते । जन्मभूमिकी बात कहते कहते तुम्हारा गला भर आया । और मुझे केवल एक सूखा प्रणाम !—अपने दोषसे ऐसे वीर पुत्रको मैंने खो दिया । (प्रस्थान ।)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—चित्तौरके पासका जगल, मुगलोंकी छावनी ।

समय—तीसरा पहर ।

[सम्राट् औरंगजेब उत्तेजित भावसे खडे हैं । सामने दिलेरखाँ और शाहजादा आजिम खडे हैं । पास ही श्यामसिंह खडे हैं ।]

औरं०—क्या दिलेरखाँ ! तुम भी इस लड़ाईमें हार आये ?

दिलेर०—हाँ जनाब ! सिर्फ हार ही नहीं आया, अपना सब कुछ गँवा आया ।

औरं०—और शाहजादा अकबर ?

दिलेर०—उनके बारेमें जो सुना है वह भी बहुत अच्छी खबर नहीं है । वे आरावली पहाडके दर्रेमे राना राजसिंहके लड़के जयसिंहके हाथ पडकर कैद हो गये हैं !

औरंग०—कैद !—अकबर—हिन्दोस्तानका होनेवाला बादशाह राजपूतके हाथ कैद !—अबकी मुगलोंकी पूरी बेइज्जती हो गई !

आजिम—(स्वगत), क्या ? हिन्दोस्तानका होनेवाला बादशाह अकबर !

दिलेर०—अब ज़हाँपनाह अपनी खबर बतावें, क्या है ? जहाँपनाहने 'दोबारी' छोड़कर चित्तौरके किलेमे पनाह ली है !

औरंग०—दिलेरखाँ! मुझे राठौर दुर्गादासने पूरी तरहसे शिकस्त दी। इस लड़ाईमें मेरा सब सामान, रसद, ऊँट, हाथी, घोड़े और प्यारी बेगम भी छीन गई।

दिलेर०—तब तो यह कहिए कि बोझ हलका होगया जनाब! अब दिल्लीको लौटना उतना मुशकिल न होगा!

औरंग०—दिल्ली लौट जाऊँगा यह बेइज्जती लेकर? (श्यामसिंहसे) क्यों राजासाहब!

श्याम०—यह कभी ही नहीं हो सकता!

दिलेर०—जैसे आप बेइज्जती लिए जा रहे हैं वैसे ही बहुतसी चीजें छोड़े भी तो जाते हैं। ऊँट—हाथी—रसद—बेगम। अब तो लौट चलना बहुत ही सहल है।

और०—इस रंजके वक्त तुम्हारी हँसी अच्छी नहीं लगती दिलेरखाँ!

श्याम०—हाँ सेनापति, हँसीका भी समय होता है।

दिलेर०—बादशाह सलामत! हँसी मुझे रंजके वक्त ही अच्छी लगती है। रंजके वक्त मेरे मुँहसे हँसीकी बात निकलती भी है।

औरंग०—मुगलोंकी ऐसी बेइज्जती कभी नहीं हुई—जैसी—

दिलेर०—जैसी आज आपके हाथसे हुई। यह मानता हूँ जहाँपनाह!

औरंग०—मेरे हाथसे या तुम्हारे हाथसे? यह मुगल-बादशाहतकी बदनसीबी है कि आज मुगल-फौजके सिपहसार दिलेरखाँ हैं! आज अगर जसवन्तसिंह जिन्दा होता—

श्याम०—अगर राजा जसवन्तसिंह जीते होते जहाँपनाह!

दिलेर०—अगर बादशाह सलामत चाहते तो वे आज जीते रह सकते थे।

औरंग०—क्या ? तुम समझते हो कि—

दिलेर०—समझता कुछ नहीं हूँ जहाँपनाह !—सब जानता हूँ। जानता हूं कि हुजूरने अफ़गानिस्तानमें उनको कत्ल करवा डाला है। इस खूनके जुल्म और वेदर्दीका वैसा असर पहले कभी मेरे दिल पर नहीं पड़ा था जैसा कि उस दिन मुगलोंकी फौजके सामने खुदा पर भरोसा करके वेधड़क खड़ी हुई रानीको जान देनेके लिए तैयार देखकर पड़ा। उसी दिन मैंने समझा था जनाब कि यह जसवन्त-सिंहका खून मुगल-बादशाहतको मिटा देगा। अगर जहाँपनाह चाहते तो यह दिलेर बहादुर दुर्गादास दुश्मन न होकर दोस्त होता, और ये राजपूत—राजा श्यामसिंहके ऐसे अपनी कौमकी और अपनी इज्जत न करनेवाले, अपने मुल्कके दुश्मन, कायर राजपूत नहीं—दुर्गादासके ऐसे सच्चे, सीधे, ऊँचे खयालके बहादुर राजपूत—मुगल-बादशाहके लिए आँधी न होकर उसको थामनेवाले खंभे होते।

औरंग०—कैसे दिलेरखाँ ?

दिलेर०—कैसे ? हिन्दोस्तानकी तवारीखके सफे उलटिए। उससे आपको मालूम होगा, कैसे। मानसिंह, भगवानदास, टोड़रमल, बीर-बल वगैरह न होते तो मुगलोंकी बादशाहत यहाँ कायम नहीं हो सकती थी और औरंगजेब भी दिल्लीके तख्त पर बैठ नहीं सकते थे। जिस जड़को बादशाह अकबर जमा गये हैं उसे आप अंजाममें अपनेको ही नुकसान पहुँचानेवाली अपनी चालसे उखाड़े डाल रहे हैं।

औरंग०—मैं !

दिलेर०—हाँ आप। जिजिया न बाँधा जाता तो न इधर राजपूत एक होते, और न उधर मराठे बिगड़ खड़े होते। राना राजसिंहने

आपकी भलाईहीके लिए यह वात लिखी थी। आप उनकी वात न सुनकर, जानवूझकर, अपने हाथों अपनी बुराईको अपने पास बुला रहे है। शाहशाह! यह याद रखिए कि डरा-धमकाकर इस दिलेर और बहादुर वडी कौम पर कोई हुकूमत नहीं कर सकता। वे अपनी खुशी-से अगर किसीके तावे रहें तो रह सकते है। और अगर यह सारी कौम बिगड खड़ी हो तो सिर्फ उसकी गर्म सांसोंसे मुगल-बादशाहत उड जा सकती है!

औरंग०—मै इस वारेमे सोचूँगा दिलेरखाँ! मेरे सिरमें दर्द हो रहा है। इस वक्त मै कुछ सोच नहीं सकता। (प्रस्थान।)

दिलेर०—खुदा तुमको समझ दे औरंगजेब!

आजिम—(अपने मनमें) अकवर हिन्दोस्तानका वादशाह!—यह न होगा!—यह हो नहीं सकता।

दिलेर०—(अपने मनमें) शाहजादे आजिमके चेहरेसे तो अच्छा रंग नही देख पड़ता! (प्रकट) क्या सोच रहे हो शाहजादा साहब!

आजिम—वह वात तुमसे कहनेकी नहीं है दिलेरखाँ!

(प्रस्थान।)

दिलेर०—हूँ!—जरूर कोई खास वात है! यह सिर्फ 'दोवारी' हार नहीं है—शाहजादेके रंग अच्छे नहीं देख पड़ते!

श्यामसिंह—तुम हार आये दिलेरखाँ!

दिलेर०—(सहसा श्यामसिंहकी ओर फिरकर) हाँ राजासाहब! मैं हार आया! क्यों, आपको वडा अफसोस हुआ! राजपूतोंका जीतना आपको अच्छा नहीं लगा!

श्याम०—नहीं, नहीं, मैं कहता था कि—

दिलेर—रहने दीजिए !—या खुदा ! तुम अजीब आदमी हो ! जिस कौममें दुर्गादास ऐसे आदमी पैदा होते है उसी कौममे श्यामसिंहके ऐसे भी आदमी पैदा होते है !—अच्छा, जनाब सिंहजी, आपका नाम श्यामसिंह न होकर शम्सुज्जोहा होता तो ठीक होता, क्यों न ?

(नेपथ्यमे कोलाहल सुन पडता है ।)

श्याम०—यह कैसा शब्द है ? जयके उल्लासकी ध्वनि है !—दुर्गादासने यहाँ आकर हम लोगोपर चढाई तो नहीं कर दी ?

दिलेर०—भागो राजासाहव ! इस पुश्तैनी जानको वचाओ ।

श्याम०—नहीं ये लोग 'अल्ला-अल्ला' कहकर चिल्ला रहे है ।—यह हमारी फौज है ।

दिलेर०—वेशक आपहीकी फौज है । अगर हमारी फौज होती तो 'हर हर वम' कहकर चिल्लाती ।—क्यों न ? अच्छा राजासाहव ! आपको यह खुशामदका इल्म किसने सिखाया था ?

श्याम०—क्यों ?

दिलेर०—वह जरूर कोई वडा उस्ताद आदमी रहा होगा । कैसा अच्छा फायदेका इल्म सिखाया था ?—वाह !

[शाहजादा अकवरका प्रवेश ।]

श्याम०—यह लो. शाहजादेसाहव तो आगये !

दिलेर०—(देखकर) हाँ, शाहजादे साहव ही तो है । वन्दगी

शाहजादा—मैंने तो सुना था, आपको दुश्मनोंने कैद कर लिया—क्या वह खवर झूठ थी ?

श्याम०—मैं जानता हूँ, झूठ थी ।

दिलेर०—हाँ, जरूर झूठ थी, महाराज जब झूठ बताते हैं तब जरूर ही झूठ थी।—क्यों राजासाहब! है कि नहीं?

श्याम०—शाहजादा जरूर दुश्मनोंको शिकस्त दे आये हैं।

दिलेर०—हाँ मैं भी तो यही सोच रहा था।—शाहजादेसाहब, क्या आप रानाको कैद कर लाये हैं?

अकबर—नहीं दिलेरखाँ! मैं ही रानाके यहाँ कैद हो गया था।

श्याम०—कौशलसे छूट आये हैं।

अकबर—नहीं राजासाहब!—रानाने मेहरबानी करके छोड दिया है।—दिलेरखाँ! राजपूतोंकी कौम लडना जानती है।

दिलेर०—सच शाहजादे साहब।

अकबर—सिर्फ लड़ना ही नहीं जानती, माफ करना भी जानती है।

दिलेर०—यह बिल्कुल नई बात आपने ढूँढ निकाली!

श्याम०—इस वक्त आप कैसे छूटे?

अकबर—दिलेरखाँ—सुनो—

दिलेर०—राजासाहबसे कहिए—सुननेके लिए वे मुझसे जियामुस्तैद हैं।

अकबर—सुनिए राजासाहब! मैं जिस वक्त आरावली पहाड़के, पिंजड़ेमें चिडियाकी तरह, फँसा हुआ था, मैं और मेरी फौज लिए कुछ न होनेसे मुर्दा हो रही थी, उस वक्त रानाने ने लड़के जयसिंहको भेजा—मुझे मारनेके लिए नहीं, कैद करके लिए नहीं,—मुझे खाने-पीनेका सामान देनेके लिए—वहाँसे छुटकारा देनेके लिए।—और क्या चाहते हो?

दिलेर०—राना और भी एक काम कर सकते थे, अपनी एक लड़की भी शाहजादे साहबके हमराह कर दे सकते थे।—जाइए,

अब भीतर जाइए । जैसेके तैसे घर लौट आये, यह भी गनीमत है ।—चलिए राजासाहब ! या आज यहाँ आपकी दावत है ?

[शाहजादा एक ओर, दिलेरखाँ और श्यामसिह एक ओर जाते हैं ।]

छठा दृश्य ।

स्थान—राजपूतोंकी छावनी ।

समय—तीसरा पहर ।

[राना राजसिंह और महामाया, दोनों बैठे हैं । सामने मुगलोंके झंडे लिए दुर्गादास और अन्यान्य सामन्त-गण खडे हैं ।]

राज०—धन्य हो दुर्गादास ! तुमने मुगलोंको मेवाड़से निकाल बाहर कर दिया ।

रानी—धन्य हो दुर्गादास ! तुम बेगमको कैद कर लाये ।—आज मैं बदला चुकाऊँगी ।

राज०—क्या ? दुर्गादास ! तुम बादशाहकी बेगमको कैद कर लाये हो ? कौन बेगम ?

दुर्गा०—काश्मीरी बेगम—गुलनार ।

राज०—उन्हें कैद कर लाये ? उसी घड़ी छोड़ नहीं दिया ?

दुर्गा०—रानासाहब ! मैं केवल सेनापति था । युद्धमें शत्रुके आदमियोंको कैद करने भरका मुझे अधिकार था । कैदियोंको छोडनेका अधिकार राजाको होता है ।

राज०—जाओ दुर्गादास ! बेगमसाहबाको इसीदम छुटकारा देकर इज्जतके साथ बादशाहके पास भेज दो ।

रानी—क्यों राना ?

राज०—औरतके साथ हम लोगोका कुछ झगडा नहीं है।

रानी—औरतके साथ झगडा नहीं है! तो फिर मैंने क्यों आकर आपका आश्रय लिया है महाराना? मुझे ही पकडनेके लिए क्या यह भारी चढाई नहीं हुई है? मैं अगर इस युद्धमें पकड ली जाती, तो वेगम मेरे साथ क्या सलूक करती?

राज०—हम मुगलोंकी नीतिका अनुकरण करने नहीं वैठे हैं।

रानी—नहीं महाराना! मैं इस वेगमको इस तरह न छोड़ूँगी। मैं वदला चुकाऊँगी।

राज०—वदला? किसका वदला महामाया?

रानी—किसका? यह पूछिए कि उसकी किस किस हरकतका वदला न लूँगी! इस काश्मीरी वेगमने ही मेरे पति और पुत्रकी हत्या की है! यह काश्मीरी वेगम ही मेरे यों जगली जानवरकी तरह एक जगहसे दूसरी जगह भागते फिरनेका कारण है—इसका वदला लूँगी राना! मैं उसे अपनी मुट्ठीमें पाकर न छोड़ूँगी। वदला लूँगी!

राज०—क्या वदला लोगी?

रानी—इस वारेमें मैंने अभी कुछ नहीं सोचा है राना! इस वारेमे ... । सोचकर ठीक करूँगी। उसे तिल तिल करके जलाना भी ...ष्ट न होगा। उसके शरीरमें सुइयाँ चुभाना भी यथेष्ट न होगा। सोचकर ठीक करूँगी। नई तरहकी यन्त्रणाके यन्त्रका आविष्कार करूँगी। स्त्रीके लायक सजा स्त्री ही सोच सकती है।

राज०—महामाया! हम तुमको पापका दण्ड देनेका क्या अधिकार है? जिनका यह काम है वे ही—

रानी—(उठकर) वे ?—कहाँ हैं वे ? वे कहाँ हैं ? वे हाथ समेटे बैठे हैं । आकाशका वज्र सदा पापीके सिर पर ही नहीं गिरता महाराज! पुण्यात्माके सिर पर भी गिरता है । भूकम्पसे पापीका ही घरबार नहीं नष्ट होता, बेचारे निरीह लोगोंके झोपडे भी मिट्टीमें मिल जाते है । प्रबल बहियामें क्षुद्र घास-फूस ही डूबते हैं, बडे बड़े पेड वैसे ही सिर ऊँचा किये खडे रहते है ! ईश्वरका नियम धर्म—अधर्मका विचार नहीं करता—जहाँ जिसे दुर्बल, जीर्ण, पुराना पाता है उसीकी गर्दन पहले दबाता है ।

राज०—(शान्तभावसे) महामाया ! जोशमें आकर ईश्वरका विचार करनेके लिए तैयार न होओ—निश्चय करो, ईश्वरके नियमसे अन्तको अधर्मका अवश्य पतन होगा ।

रानी—कब होगा !—मैंने तो आजतक नहीं देखा राना ! मैंने तो आजतक यही देखा कि सरलता सदासे चालाकीके पैरो पड़कर भीख माँगती आती है, चालाकीने एकबार उसकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं । सत्य सदासे झूठकी गुलामी करता आता है—अपने मस्तकको ऊँचा नहीं कर सकता । मैं सदासे न्यायकी जगह पर अन्याय-की विजय-पताका फहराती हुई देख रही हूँ । मै सदासे धर्मके टूटे मन्दिरमें अधर्मके विजयकी जयध्वनि सुनती आ रही हूँ । पुण्यके हरे-भरे राज्यके ऊपरसे भयानक पापकी रक्तरंजित बहिया लहराती देख पड रही है । घूस, अत्याचार, झूठ, विश्वासघात आदिसे पृथ्वी परिपूर्ण हो रही है ।—तब भी तुम कहते हो, अन्तमें धर्मकी जय होगी ।—कब होगी ? बतलाओ, कब होगी ?

राज०—शान्त होओ महामाया ! अपनेको सँभालो—धैर्य धारण करो ।

रानी—धैर्य! राना, अगर तुम स्त्री होते, और तुम्हारा पति परदेशमे विश्वास-घातकके हाथों विष देकर मारा जाता, अगर बेदर्दीके साथ तुम्हारे सरल, उदार पुत्रकी हत्या की जाती, अगर मेरी तरह नन्हेसे निस्सहाय निरीह बच्चेको लेकर एक देशसे दूसरे देशमे आकर भिक्षुककी तरह द्वारद्वार मारे मारे फिरना पडता तो तुम समझते।—धैर्य!—नहीं राना—मै उस पापिनको यों न छोड़ूँगी।

राज०—दुर्गादास! जीतेजी मै अबलाके ऊपर अत्याचार होते न देख सकूँगा। जाओ, तुम सम्मानके साथ बेगमको बादशाहके पास पहुँचा दो।

रानी—दुर्गादास! तुम रानाके नौकर नहीं हो। मैं तुम्हारी मालकिन हूँ।

दुर्गा०—क्षमा कीजिए महारानी! इस युद्धमें हम सब रानासाहबके अनुचर है। बेगम आज मेवारके रानाके यहाँ कैद हैं, मारवाड़की रानीके यहाँ नहीं। महारानी! अपनेको न भूलिए। आपहीकी रक्षाके लिए रानाने यह युद्ध किया है। राना आपके हितचिन्तक हैं। उनकी आज्ञा मानना आपका भी धर्म है।

रानी—(कुछ देर चुप रहकर) तुम सच कहते हो दुर्गादास! (फिर रानाके सामने घुटने टेककर) राना! क्षमा कीजिए। हृदयके शोकावेगसे अधीर होकर मै पागलसी हो गई—क्षमा कीजिए। किन्तु यदि तुम इस तीव्र वेदना, इस दारुण ज्वाला, इस गहरी जीकी जलनको जान सकते।—मै पागल हो रही हूँ! क्षमा कीजिए!

राज०—मैं पहले ही क्षमा कर चुका हूँ महामाया! मै चाहता हूँ कि जो क्षमा तुमने मुझसे माँगी है वही क्षमा तुम बेगमको दिखलाओ। मै विचारके लिए बेगमको तुम्हारे पास छोड़े जाता हूँ। उसे क्षमा

करो, अपना महत्त्व दिखलाओ! महामाया! स्नेह, दया, भक्ति, क्षमा आदि गुणोंसे ही स्त्रीजाति पूजनीय है। ये गुण ही अवलाकी शक्ति है। और अगर तुम दण्ड ही देना चाहती हो, तो सोचो तो, तुमने अपने ऊपर अत्याचार करनेवालेको अगर हँसते हँसते क्षमा कर दिया तो क्या वह उसके लिए कम दण्ड है!

रानी—ठीक है! वेगमको ले आओ दुर्गादास।

(दुर्गादासका प्रस्थान।)

राज०—अच्छा तो मै अब तुम्हारी दयाके ऊपर बेगमको छोड़े जाता हूँ महामाया! (रानाका प्रस्थान।)

रानी—यह भी ठीक है! इस न्यायासन पर बैठकर मै उसका विचार करूँगी—इतना ही यथेष्ट है। भारतकी सम्राज्ञी, औरंगजेबकी वेगम, मेरे पति और पुत्रकी हत्या करानेवाली डाइन, आज मेरे सामने अपराधी कैदीकी दशामे खड़ी होगी; मै सिंहासन पर बैठे बैठे उसके मुँहकी ओर देखकर उसे प्राणोंकी भिक्षा दूँगी। यही क्या बुरा है!—वह आ रही है। इस समय भी मुंह पर वही ऐंठन, नजरमें वही घमंड, चालेमें वही अहंकार है! जगदीश्वर! पापको इतना उज्ज्वल और विचित्र वनाकर तैयार किया है!

[वेगम गुलनारके साथ दुर्गादासका प्रवेश ।]

रानी—सलाम वेगम साहवा!

गुलनार०—जसवन्तसिंहकी रानी?

रानी—हाँ क्या पहचान नहीं सकती हो? जिसे पकड़नेके लिए इतनी तैयारीसे यह चढाई हुई थी मै वही जसवन्तसिंहकी रानी हूँ। आपने मेरे पति और पुत्रको खा लिया। इससे भी वह राक्षसी-पेट नहीं भरा। अब मुझे और मेरे छोटे बच्चेको भी खाना चाहती हो!—

क्या इसी बीचमें सब भूल गईं? इतनी भूल करनेसे काम कैसे चल सकता है बेगमसाहबा?

गुलनार—(दुर्गादाससे) और तुम्हीं दुर्गादास हो!

दुर्गा०—हाँ बेगम साहबा!

गुल०—मुझे यहाँ क्यों लाये हो?

दुर्गा०—यहाँ आपका न्याय-विचार होगा।

गुल०—कहाँ? किसके आगे?

रानी—मेरे यहाँ, मेरे आगे।—बात जरा रूखी बेढगी जान पड़ती होगी, क्यों न? क्या कीजिएगा।—चक्र घूम गया है बेगम! क्या! दुर्गादासको ओर इतना क्यो आप गोर कर रही है? सोचती होंगी, इस काफिरकी इतनी मजाल कि आपको कैद कर लावे! यही सोचती है,—क्यों न? अच्छा, अब आप कौन सजा पसंद करती हैं?

गुल०—मैं तुम्हारे यहाँ कैद हूँ; जो जी चाहे, करो।

रानी—जो जी चाहे वही करूँ? बेगमसाहब, मेरे मनकी सजा तो आपके लिए बहुत ही कठिन होगी! मेरी जो इच्छा है, वह दण्ड तुम्हारे लिए असह्य होगा! तुम उसे सह न सकोगी। वह बड़ी ही कडी सजा है। नरककी ज्वाला उसके आगे वसन्त-वायुके समान ठडी है!—सैकड़ों विच्छुओंके काटनेकी जलन भी उसके आगे झरनेके पानीके समान शीतल है! मेरा जो जी चाहे? मेरा क्या जी चाहता है, जानती हो बेगम?—खैर जाने दो—तुम मुझे अगर पकड मँगवातीं तो क्या करतीं बेगम साहबा?

गुलनार—क्या करती? तुमको अपने पैरोंका धोवन पिलाती। उसके बाद मरवा डालती।

रानी---अभीतक तेज नहीं गया ! विषका दाँत उखड़ गया, मगर फुफकार कम नहीं हुई । बेगम साहबा ! खेद है, तुम्हारी आशा पूरी नहीं हुई ! आज मुझे तुम्हारे आगे इस तरह खडा होना चाहिए था, क्यों न ? पर क्या किया जाय, तुमको ही मेरे आगे इस तरह खडे होना पडा ।—देखो गुलनार ! सुनो वादशाहकी बेगम ! आज तुम मेरी मुट्ठीमें हो । चाहूँ तो मैं तुमको पैरका धोवन भी पिला सकती हूँ, तुम्हारी हत्या भी कर सकती हूँ ! किन्तु मै वह कुछ न करूँगी । मैं तुम्हें छोड़े देती हूँ । सेनापति ! इनको वादशाहके पास पहुँचा आओ । (गुलनारसे)—खडी हुई हो !—विस्मय हुआ ?—राजपूतोंका यही बदला है ।　　　　(यवनिका-पतन ।)



तीसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान—दिल्लीके महलकी बाहरी बैठकका बरामदा।

समय—प्रात काल।

[तहव्वरखॉं और शाहजादा अकबर खडे बातें कर रहे हैं।]

तहव्वर—हॉं तो तुम लोगोंको राजपूतोंने ठीक उसी तरह फँसा लिया था जैसे मूसदानमें मूसेको फँसा लेते हैं।

अकबर—ठीक उसी तरह! हम लोग दूर बहुत दूर तक सीधे चले गये, वहॉं देखा, आगे जानेकी राह नहीं है। घूम कर देखा, वह राह भी बन्द थी।

तहव्वर—और पहाडके ऊपरसे राजपूत लोग तमाशा देख रहे थे कि मूसदानके भीतर फँसे हुए मूसेकी तरह तुम लोग एक बार इधर और एक बार उधर दौड़ रहे हो?

अकबर—वह पहाडी रास्ता इतना तग था कि सौ आदमी भी पास पास नहीं खड़े हो सकते थे। ऐसा तग था कि हमारी फौजका कौन आदमी कहॉं है, यह भी देखना मुश्किल था।—ऐसा तग था!

तहव्वर—तो लडाई नहीं हुई?

अकबर—लडाई किससे करते? पहाडसे? दुश्मनोंका पता ही नहीं चला।

तहव्वर—यही मै बराबर कहता चला आता हूँ कि राजपूत लोग लडना जानते ही नहीं ।—एक कायदा मानकर नहीं चलते। किसीने कभी सुना है—रसद लूट कर, भूखों मार कर, लड़ाई जीतना !

[आजिमका प्रवेश ।]

तहव्वर—बन्दगी शाहजादासाहब !

आजिम—(उधर ध्यान न देकर) अकबर, तुमने सुना ?

अकबर—क्या आजिम ?

आजिम—मेवाड़की लडाईमें तुम्हारी इस हारसे अब्बाजान बहुत नाखुश है ।

अकबर—फिर मैं क्या करूँ !—और आजिम, इस लड़ाईमे सिर्फ मैंने ही शिकस्त नहीं खाई है । खुद दिलेरखाँ—

आजिम—दिलेरखाँके ऊपर भी बादशाह सलामत खुश नही हैं ।

अकबर—और बादशाह सलामत खुद ? और तुम ? तुम लोग क्या इस लडाईमें जीत आये हो ?

आजिम—हमने दुश्मनोंसे लडकर शिकस्त खाई है ।

अकबर—और मैंने ?

आजिम—तुम ऐश-अशरतमें पड़े रहे, लडे नहीं। कमसे कम बादशाह सलामतका यही खयाल है ।

अकबर—होने दो, फिर मैं क्या करूँ !

तहव्वर—शाहजादा किससे लडते ?—

आजिम—चुप रहो !

अकबर—तो अब क्या करना होगा !—मैं डरपोक हूँ, ऐयाश हूँ, मुझे नाच और गाना पसन्द है ।—तो होगा क्या ?

आजिम—होगा और क्या! अकबर! बादशाह सलामत तुमको नालायक समझकर फिर बंगाल भेजे देते थे। मैने बहुत कुछ कह सुन कर उनके इस इरादेको बदला है। देखो, मै तुमसे दोस्तके तौर पर कहता हूँ,—अब्बाजान तुम पर बहुत खफा है; खबरदार! उनके पास आना-जाना तुम्हारे लिए अच्छा न होगा। (प्रस्थान।)

तहव्वर—शाहजादासाहब! ढग तो अच्छे नहीं नजर आते। आपने लडाई न जीतकर बडी ही बेवकूफी की है।

अकबर—मैं क्या जान बूझकर अपनी मर्जीसे हार आया हूँ!

तहव्वर—यह ठीक है! लेकिन गैरमर्जीसे भी हारना अच्छा नही हुआ। तख्त पानेकी अगर कुछ उम्मेद थी तो वह भी गई!

अकबर—तो फिर तख्त किसे मिलेगा ?

तहव्वर—आजिमको। आपने देखा नहीं, कैसी कहरकी नजरसे मुझे घूरकर डॉट बताई। आजिमने जरूर बादशाहको सुझा-बुझाकर अपने माफिक कर लिया है।

अकबर—तो आजिमने ही कौन बडी बहादुरी दिखाई है! वही क्या जीतकर आये है! हारकर—बेगमसाहबा तकको गँवा आये है। राजपूत लोग भले मानस होते है, इसीसे उन्होंने बेगमसाहबाको बादशाह सलामतके पास भेज दिया।

तहव्वर—आजिम भी हार आये है, लेकिन वह हार तो खुद बादशाहकी है न। बादशाह आजिमसे उसके लिए कुछ कह नहीं सकते। आजिम बादशाहकी मातहतीमें उनके कहनेके माफिक कारवाई करते थे; और आप थे खुदमुख्तार सरदार।

अकबर—आजिमको बादशाह सलामत प्यार करते है—क्योंकि वह चापलूस है, कट्टर मुसलमान है—शराब नहीं छूता, गाना नहीं

सुनता, दस दफे नमाज पढता है !—मगर उसके ये सब ढोंग है ।—बाद-शाहको खुश रखनेका ढंग है ।

तहव्वर—आप भी वही क्यो नही करते ?

अकबर—तहव्वर खॉ !—मै सल्तनत और तख्तको छोड़नेके लिए राजी हूँ, मगर शराब, औरत और गानेको छोडनेके लिए तैयार नहीं। मै आजिमकी तरह मक्कार, फरेबी, छोटी तबीयतका नही हूँ। तस्बीह हाथमें लिए रहकर फरेब करना मुझे पसंद नहीं है !

तहव्वर—चुप रहिए, बादशाह सलामत आ रहे है !

[अकबर चुपचाप दूसरी ओरसे चले जाते हैं और इधर औरंग-जेब और दिलेरखॉ प्रवेश करते है ।]

औरंग०—क्या ! दुर्गादासने झालावाड जीत लिया ? और पुरमण्ड-लमें सुबलदासने खॉ और रुहेलोंको शिकस्त दी !

दिलेर०—हॉ जहॉपनाह ! और भी यह खबर है कि दयालशाहने मुगलोंकी फौजको मालवेसे निकाल भगाया है। अब वह वहॉ काजि-योंको पकड-पकडकर उनकी दाढियॉ मुडवाता है, कुरानको कुएमें डल-वाता है, मसजिदोंको ढहवा रहा है ।

औरंग०—क्या ! इस तरह दीन पर जुल्म !

दिलेर०—हिन्दू लोग इस बातको नहीं जानते थे । हुजूरने ही इनको यह राह दिखलाई है। क्या हुजूरने हिन्दुओंके वेदोंको आगमें नहीं जलाया ? ब्राह्मणोको पकड़कर जबरदस्ती कल्मा नहीं पढाया ? तीर्थोंको नापाक नहीं किया ? मन्दिरोंको नहीं गिरवाया ?—जनाब ! सुनिए! हिन्दुओंसे मुखालफत छोड़िए, 'जिजिया' बन्द कर दीजिए। हिन्दू और मुसलमान एक हो जायँगे।

औरंग०—कभी नहीं! जबतक मैं जिन्दा हूँ—तबतक मुसलमान मुसलमान हैं और काफिर काफिर हैं।—दिलेरखाँ! मैंने दक्खिनसे मौजमको बुलाया है। अब सारी मुगलोंकी फौज लेकर मारवाड़ पर चढाई करूँगा। देखूँ क्या होता है!—तहव्वरखाँ! तुम सत्तर हजार फौज लेकर मारवाड पर चढाई करो। मै और भी फौज अकबरकी मातहतीमें भेजता हूँ। खुद मैं भी फौज लेकर पीछेसे आता हूँ। देखो, अगर मारवाड़ पर फतेह पा सकोगे तो तुमको मैं इनाममें एक सूबा दूँगा और अगर हारे तो हथकड़ी-बेड़ी। (प्रस्थान।)

तहव्वर—क्या कहते हो खाँ साहब?

दिलेर०—एक दफा मैं देख चुका हूँ; एक दफा तुम भी देखो।

दूसरा दृश्य।

स्थान—दिल्लीके शाही महलके भीतरका बाग।

समय—सायंकाल।

[बेगम गुलनार उसी बागमे टहल रही है।]

गुलनार—कैसा लम्बा चौड़ा गठीला बदन था! कैसा ऊँचा और चौड़ा मत्था था! कैसी तेज नजर थी! कैसा रौबीला और शानदार चेहरा था! वाकई दुर्गादास एक खूबसूरत बहादुर जवान है! लेकिन कैसे ताज्जुबकी बात है!—उसने एक दफा भी चाहसे मेरी तरफ नहीं देखा! उसने इस लासानी हुस्नको हसरतकी निगाहसे नहीं देखा! इस जवानीकी बिजलीने उसे बेहोश नहीं बना दिया! या खुदा! तेरी इस दुनियामें ऐसे भी आदमी है!—

[गाते हुए रजियाका प्रवेश ।]

गीत ।

कैसे सखी बिताऊँ उन बिन ये रात सारी ॥ कैसे० ॥
पल भर न देख पाऊँ तो बोझ जिंदगी हो ।
उन बिन जियूगी कैसे, चिन्ता यही है भारी ॥ कैसे० ॥
रखती हृदयमें तो भी जो दूर जान पडते ।
कैसे रहूँगी अब मैं हो दूर उनसे न्यारी ॥ कैसे० ॥

रजिया—क्यों अम्मीजान!—शाम हो गई और तुम अभी तक इस सूनसान बागमें अकेली फिर रही हो?

गुलनार—मुझे अकेलेमें ही अच्छा लगता है!

रजिया—पहले तो यह बात न थी!—अम्मीजान! आजकल तुम इतनी फिक्रमें क्यों डूबी रहती हो?—पहले तो तुम्हारा यह हाल न था।

गुलनार—तूने कभी किसीको पसंद किया है?

रजिया—क्यों नहीं! खानेमें खिचड़ी और गानेमें खेमटा मुझे बहुत पसन्द है। सबसे बढ कर मुझे मेरी बिल्लीका बच्चा पसंद है—"मेओं–मेओं–मेओ।—" मगर बेचारा राग-रागिनीका हाल कुछ नहीं जानता!

गुलनार—दूर! पगली लडकी! मैं कहती हूं, तूने कभी किसी आदमीको चाहा है?

रजिया—आदमी को!—चाहती क्यों नहीं हूँ—तुमको चाहती हूँ, अब्बाको चाहती हूँ,—और एक आदमीको खूब चाहती थी, वह मर गया।

गुलनार—किसको?

रजिया—उसी बुड्ढे बावर्ची करीमको। कैसा अच्छा खाना पकाता था अम्मीजान!—जैसे एकदम मल्लार राग। (गाने लगती है)

"पियासे कहियो वरखा रितु आई"—लेकिन यह 'टेस' है! मलारसे मिलता जुलता ही है।

गुलनार—रजिया, एक गाना गा, मैं सुनूँगी।

रजिया—(खुशीके साथ) सुनोगी?—अच्छा ठहरो, तबूरा ले आऊँ।

(दौडकर जाती है।)

गुलनार—चाहे जो हो, मैं एक दफा उसे चाहती हूँ! उसके गरूरको चूर करूँगी। ऐसी मजाल! मेरे सामनेसे एक मर्द सिर झुकाये विना चला जायगा? चाहसे, इश्कसे—उसका दिल बेचैन न होगा? घुटने टेककर मेरी एक प्यारकी नजर पानेके लिए मिन्नतें न करेगा?—ऐसा अन्धेर? हुस्नकी एसी वेइज्जती!

[रजियाका प्रवेश।]

रजिया—(तबूरा गोदमें रखकर) क्या सुनोगी?

गुलनार—कल रातको छतके ऊपर तू जो गा रही थी!

रजिया—वह? वह चीज तो मैं तंबूरे पर न गा सकूँगी।

गुलनार—तो यों ही गा।

(रजिया तबूरा रखकर खडी होकर गाती है।)

गीत।

छिपाके अपने हृदयको अब तो ए मेरी सजनी रहा न जाता।
वढी है गगा, उठा है तूफान जल उछलता है थरथराता॥
थपेडे देती हुई किनारे उमगसे नाचती हैं लहरें।
ये जोर तूफान बाँधसे क्या मैं रोक सकती हूँ हे विधाता?
न मानके इस मना कियेको सुनूँगी मैं, मनमें ठान ली है।
न सोहता अब है मान, ऐसे समय न अभिमान ही सुहाता।
ये मानकी नाव अब वहाकर, प्रचण्ड तूफान बीच सजनी—
उमगमें फाँद ही पडूँगी, समझमें मेरी यही है आता॥
तरग पर इसकी चट चलूँगी, कहाँ पडूँगी, ये आज देखूँ।
लगाई वाजी है जिंदगीकी, न शर्मका ख्याल मनको आता॥

रजिया—क्यों अम्मीजान, कैसी अच्छी गजल है !

गुलनार—(अनसुनी करके) सचमुच उमगकी आँधी उठी है ! इस तूफानको सब्र और समझके बाँधसे रोकना बिल्कुल ही नामुमकिन है। और रोकनेकी जरूरत ही क्या है ! प्यारकी भारी लहर आकर मुझे वहा ले जाय ! मुझे डुबा दे। निरालेपनमे ही मेरी दिलचस्पी है। जिसे कोई नही कर सकता वही करनेमे मुझे फक्र है।—मैं दुर्गादासको चाहती हूँ। जसवन्तकी रानीको पकड़नेका तो सिर्फ बहाना है। मेरा शिकार दुर्गादास है। औरगजेव !—मारवाड़ पर चढाई करो। मैं दुर्गादासको चाहती हूँ। (प्रस्थान।)

रजिया—अम्मीजानका ढग तो कुछ समझमे नहीं आता। न जानें क्या बुदबुदाती हुई चली गई। ऐसी उम्दा गजल—ऐसा उम्दा गाना—कुछ भी नही समझीं। (वही गजल गाते गाते प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।



स्थान—मारवाडका पहाडी स्थान।

समय—प्रात काल।

[दुर्गादास और भीमसिंह दोनों आमने सामने खडे है। थोड़ी दूरपर गाँवोंके रहनेवाले लोग कोलाहल कर रहे है।]

दुर्गा०—भीमसिंह ! अबकी वार बादशाह सारी मुगल-सेना लेकर मारवाड पर चढाई कर रहे है।—अबकी हम लोगोंके लिए जीवन-मरणकी समस्या उपस्थित है। इस वार राजपूत जातिका या तो सर्व-संहार ही हो जायगा और या यह जाति उठ खड़ी होगी—वीरवर ! इस महायुद्धके लिए तैयार हो जाओ।

भीम०—इसीके लिए पिताजीने मुझको यहाँ भेजा है। मैं इ युद्धमें प्राणतक देनेके लिए तैयार होकर आया हूं।

दुर्गा०—सीसोदिया वीर! तुम्हारी वीरता और तुम्हारे स्वार्थत्यागक बात मुझे अच्छी तरह मालूम है। किन्तु सुनो मेवाड़के युवराज! तु महत् हो, पर इस समय तुमको उससे भी अधिक महत् बनना होग —तुम वीर हो, पर इस युद्धमें तुमको वीरताकी पराकाष्ठा दिखान होगी।

भीम०—सेनापति, आप निश्चिन्त रहिए। अपना कर्त्तव्य समझ कर मैं इस युद्धमें प्राणत्याग करने आया हूँ। वह कर्त्तव्य मेरा अप ने प्रति है, पिताके प्रति है, और सारी राजपूतजातिके प्रति है। उ कर्त्तव्यके मार्गसे भीमसिंह एक पग पीछे नहीं हटनेका। आप मुझ प विश्वास रखिए।

दुर्गा०—भीमसिंह! कुमार! हमको तुम पर पूर्ण विश्वास है।

भीम०—महारानी कहाँ है?

दुर्गा०—वे इस समय सारे मारवाडमे—नगरोंमें, गाँवोंमें, जंगलों पहाडोंमें—सर्वत्र फिर रही हैं। वे खुद सेना इकट्ठी कर रही हैं राजपूत जातिको उत्तेजित उत्साहित कर रही हैं। इसीसे उन्हें एक करनेका काम महारानी खुद कर रही हैं।

भीम०—मैं एक वार उनसे मिलना चाहता हूँ।

दुर्गा०—आज ही उनसे मुलाकात होगी कुमार! वे आज इ गाँवमे आनेवाली है। मै उन्हींसे मिलने यहाँ आया हूं।

[समरदासका प्रवेश।]

दुर्गा०—कुछ खबर मिली भैया?—

समर०—हाँ, मुगल सेनापति तहव्वरखाँ, ७०००० फौज लिये मारवाडकी ओर आ रहा है! पीछे शाहजादे अकबरके साथ और भी फौज आ रही है।

दुर्गा०—और बादशाह?

समर०—वह भी सेना लिये अजमेरमे ठहरे है। उनके साथ एक लाखसे भी अधिक सेना है।

[दुर्गादास भीमसिंहकी ओर देखते हैं।]

भीम०—राठौरोंकी सेना कितनी है सेनापति?

दुर्गा०—दस हजार। हमारी एक लाखसे अधिक सेना थी। जसवन्तसिंहके मरनेसे सब इधर उधर तितर-बितर हो गई—सेनाके अधिकाश लोग रोजगार और खेतीमे लग गये है। महारानी उन्हींको जमा करनेके लिए निकली हैं। इन गाँवोंके रहनेवालोंको देखते हो? जैसे इनमे जान ही नहीं है। किन्तु ये ही लोग उत्तेजित होंगे। महारानीके शब्दोंमे जैसे उत्तेजनाकी बिजली भरी हुई है।—वे जैसे आज किसी स्वर्गीय प्रेरणासे यह काम कर रही हैं। उनकी बाते आज ठंडे पत्थरको भी गर्म कर सकती है—कायरको भी जोशसे पागल बना सकती हैं।

भीम०—वे देखो महारानी आ रही है।

दुर्गा०—हाँ, वह आ रही हैं कुमार! जरा हटकर खड़े होओ।

भीम०—निस्सन्देह! यह अपूर्व रूप है सेनापति! ऐसा रूप तो मैंने कभी नहीं देखा! कैसी दानव-दलनी चण्डिकाकी मूर्ति है! पीठ पर घने बिखरे हुए केश, आँखोंमें दिव्य ज्योति, मस्तक पर अपूर्व गर्वकी झलक और ओठोंपर वराभयदायिनी शान्तिकी रेखा देखकर ऐसा कोई नहीं होगा जो सिर झुकाकर इस देवीकी आज्ञा माननेके लिए तैयार

न हो जाय। बस, अब कुछ भय नहीं है दुर्गादास! स्वयं जननी जन्मभूमि इस रूपसे हमारी सहायता करनेको खड़ी हुई हैं—अब कुछ डर नहीं है।

[दुर्गादास और भीमसिंह आड़में हो जाते हैं। रानी और उनके पीछे ग्रामवासी प्रवेश करते हैं।]

ग्रामवासी—जय रानीमाईकी जय!

१ ग्राम०—महारानीके लिए जगह दो।

२ ग्राम०—हम महारानीको अच्छी तरह देख नहीं पाते।

रानी—(पासके एक ऊंचे पत्थर पर खड़े होकर) ग्रामवासियो! सैनिको! पुत्रो!

३ ग्राम०—हमें सुन नहीं पड़ता। हम सुन नहीं पाते।

रानी—सुन पड़ेगा। चुप होकर सुनो।

४ ग्राम०—सब लोग चुप होकर, मन लगाकर सुनो।

रानी—सुनो, आज मैं यहाँ क्यों आई हूँ—सुनो—

[ग्रामवासियोंमें कोलाहल।]

५ ग्राम०—अरे भाई चुप होकर सुनते क्यों नहीं, सुनो।

रानी—पहले मैं अपना परिचय दूं! सुनो—मैं कौन हूं।

६ ग्राम०—अरे भाइयो चुप रहो! सुन नहीं पड़ता।

रानी—मारवाड़के रहनेवालो! मैं जसवन्तसिंहकी रानी हूँ। बादशाह औरंगजेबकी चालाकीसे अफगानिस्तानमें मेरे स्वामी—तुम्हारे राजा—जसवन्तसिंहकी मौत हुई। मेरे बड़े लड़के—तुम्हारे राजकुमार—पृथ्वीसिंहकी औरंगजेबके छलसे विषके द्वारा मृत्यु हुई। मेरा छोटा लड़का—तुम्हारा होनहार राजा—अजितसिंह औरंगजेबकी आँखोंका काँटा होनेके कारण एक एकान्त स्थानमें छिपाकर रक्खा गया है। और मैं—तुम्हारी रानी—राह राह मारी मारी फिर रही हूं।

[ग्रामवासियोंका कोलाहल ।]

७ ग्राम०—तो हम क्या कर सकते है !

८ ग्राम०—हममें उतनी ताकत ही नहीं है ।

९ ग्राम०—किन्तु बादशाहके ऐसे घोर अत्याचारको रोकनेके लिए कुछ–न–कुछ उपाय अवश्य करना चाहिए ।

१० ग्राम०—हमारी तो रानी है । हम न करेंगे तो और कौन करेगा ?

रानी—सुनो ग्रामवासियो–किन्तु मै अपना ही दुःख जतानेके लिए तुम्हारे पास नहीं आई हूँ । मैं आई हूँ आज सुंदर मारवाडके लिए तुमसे सहायता मॉगने। बादशाह एक लाखसे अधिक सेना लेकर मारवाडपर चढाई किये आ रहे हैं । तुम लोग मारवाड़की सन्तान हो, तुम राजपूत हो, तुम वीर कहकर प्रसिद्ध हो । तुम क्या निश्चिन्त होकर खडे खडे अपनी जन्मभूमिको परपददलित होते—लुटते और मिटते—देख सकोगे ?

११ ग्राम०—एक लाखसे अधिक सेना ! हाय अभागे मारवाड़ !

१२ ग्राम०—सेनापति अगर झालावार पर चढाई न करते तो यह आफत न आती ।

१३ ग्राम०—हॉ । सोते हुए शेरको जगाना यही कहलाता है !

१४ ग्राम०—एक लाख मुगल-सेनासे युद्ध करना हीनवीर्य मारवाडके लिए कभी सम्भव नहीं ।

१५ ग्राम०—किसी तरह नहीं ।

रानी—सभव नहीं है ? सभव नहीं ? तो तुम यही चुपचाप खडे देखोगे कि तुमको निकालकर—नष्टकर—मुगलोंकी सेना इस तुम्हारी स्वर्णभूमि पर अधिकार कर ले ? हा, धिक्कार है ! उतना

पतला पानी भी अगर उसे उसकी जगहसे हटाओ तो बाधा देता है। और तुम चुपचाप, कोई चेष्टा न करके, अपना देश शत्रुओंको सौंप दोगे? तुम हिन्दू हो! तुम राजपूत हो! तुम क्षत्रिय हो!—फिर भी कहते हो कि सम्भव नहीं है? जसवन्तसिंह अगर जीते होते तो उनके सामने यह कहनेका साहस तुम्हें न होता। उनके लिए तुम सब प्राण देनेको तैयार थे। जसवन्तसिंहकी एक दृष्टिसे तुम्हारा खून गर्म हो उठता था, उनकी एक बातसे दसहजार तरवारें म्यानसे खिंच जाती थीं, उनको घोड़ेपर सवार देखते ही तुम्हारी 'जय-ध्वनि' आकाशमें गूँज उठती थी। मैं स्त्री हूँ। मै उनकी विधवा अनाथ स्त्री हूँ। मै आज फकीर—कंगालसे भी बदतर हो रही हूँ। मेरी बात तुम क्यों सुनोगे? मै तो अब तुम्हारी रानी नहीं हूँ।

सब ग्रामवासी—आप हमारी महारानी हैं। हम आपकी बात सुनेंगे।

रानी—अच्छा अगर सुनोगे तो अपने गाँवो और झोंपडोको छोड कर आओ। तरवार लो। उठो, इस उदासीनताको छोड़ो। एक बार दृढ होकर उठ खडे होओ। उठो जैसे तुरहीके शब्दसे सोता सिंह जाग उठता है। उठो—जैसे तोंबीकी ध्वनि सुनकर सर्प फुफकार उठता है। उठो—जैसे बिजलीकी कडकसे पहाडकी कन्दराओंमें प्रति-ध्वनि जग उठती है। जैसे तूफानमे समुद्रकी लहरे उठती है। उठो। राज-स्थान जाने, औरंगजेब जाने कि तुम्हारी वीरता गुप्त थी, लुप्त नहीं हुई।

सब ग्राम०—महारानी। हम युद्ध करेंगे। किन्तु इस युद्धमे जीत-नेकी आशा नहीं है। मरना ही हाथ लगेगा।

रानी—मरना! पुत्रो, एक दिन क्या मरना न होगा? बिछौने पर पडे पड़े दुर्गतिमे मरना सुखकी मौत नहीं है। अपनी इच्छासे, देशके लिए, औरोंके लिए, कर्तव्यके लिए मरना ही सुखकी मौत है।

सब ग्राम०—हम लड़ेंगे महारानी। आप जहाँ ले जायेंगी वहाँ चलेंगे।

रानी—यही तो तुम्हारे योग्य बात है। सुनो, मै किसीको उसकी इच्छाके विरुद्ध नहीं बुलाती। अगर किसीको अपनी जन्मभूमिका खयाल हो, यदि किसीको अपने धर्म पर भक्ति हो, यदि कोई स्वाधीनताके लिए प्राण देनेको तैयार हो, तो वह आवे। वह अकेले ही एक सौके बराबर है। कच्चे दिलके, दुविधामे पडे हुए आदमियोंको मै नहीं चाहती। मुझे एकाग्र दृढप्रतिज्ञावाले आदमी चाहिए। दो रास्ते है. पसद कर लो।—एक तरफ विलास, आमोद, आराम, और भोग है; दूसरी तरफ मेहनत, अनाहार, दारिद्र्य और दुःख है। ए ओर ससार, घरबार और शान्ति है; दूसरी ओर देशके प्रति कर्त्तव्य है—पसन्द कर लो।

सब ग्राम०—हम कर्त्तव्य-पालनको ही पसन्द करते हैं।

रानी—अच्छी बात है। तो आज सब राठौर एक झडेके नीचे खडे हो जाओ। आपसके छोटे बड़े सब झगड़ोंको भूल जाओ। एक बार सब मिलकर हृदयसे पुकारो—जननी जन्मभूमिकी जय।

सब ग्राम०—जननी जन्मभूमिकी जय।

चौथा दृश्य ।

स्थान—युद्धभूमिमें रजियाका डेरा ।

समय—रात्रि ।

[पानी बरसता है, हवा चलती है, विजली चमकती है, और बादल गरजता है ।]

रजिया गारही है ।

गीत ।

गगनमें घोर घटा घनकी घेर आई है ।
प्रलयकी ऐसी अँधेरी जगतमें छाई है ॥
फुहार लेके झकोरे हवाके चलते हैं ।
ये आँधी पानीकी कैसी विकट लडाई है ॥
गरज रहे हैं ये बादल जो गड़गडाहटसे ।
चमकसे विजलीकी दिलमें दहल समाई है ॥
प्रचण्ड अधड आँधी हुई है पगली सी ।
गगनसे उठके ये धरतीकी ओर धाई है ॥
विखेर बालोंको यह अट्टहास करती सी ।
अवाज 'हा हा' की करती बलन्द आई है ॥
चमकसे कौंधेकी आँखें हैं चौंधियाई सी ।
ये कडकडाती है विजली ! खुदा, दोहाई है !

रजिया—ओः ! या खुदा ! यह कैसा शोरगुल है ! फौजकी चिल्लाहट ! तोपोंका गरजना ! जगी बाजोंकी धमाचौकडी !—एकाएक यह क्या होने लगा ! कान जैसे फटे जा रहे हैं !

(कानोंमें हाथ लगाना ।)

[अकबरका प्रवेश ।]

रजिया—कौन ? अब्बा ?

अकबर—हाँ रजिया !

रजिया—ओः! आप तो सिरसे पैरतक तरबतर हो रहे है! बाहर यह क्या हो रहा है! इतना शोरगुल क्यो मचा हुआ है!

अकबर—जंग हो रहा है। राजपूतोंने हमारी छावनी पर छापा मारा है।

रजिया—छापा मारा है सो तो खैर, लेकिन ये इतना बेसुरे चिल्लाते क्यों हैं?

अकबर—तू नहीं समझ सकती रजिया कि मामला कितना बेढब है। ओः! एक पर एक करके हजारो लाशे गिर रही हैं!

रजिया—सो तो समझी। लेकिन मैं यह पूछती हूँ कि इतना चिल्लाते क्यों हैं?

अकबर—क्या बकती है रजिया—यह खास मौतका सामना है! मौतको इतने नजदीकसे मैंने कभी नहीं देखा!—ओः! तुझे खबर है कि बाहर कितने लोग मर रहे हैं?

रजिया—इसीसे भाग आये हो अब्बा! डर लगता है! डर क्या है अब्बा!

अकबर—शायद आज मुझे और तुझे भी मरना पड़ेगा।

रजिया—अगर मरना ही होगा तो गाते गाते मरूँगी! किनारेसे टकराई हुई लहरकी तरह ही गाते-गाते मौतमें मिल जाऊँगी!

अकबर—(कान लगाकर) यह क्या! बार बार राजपूतोका ही 'जय जय' का नारा बलन्द हो रहा है!—वे दुश्मन लोग पास ही आगये!

नेपथ्यमें—जय, महारानीकी जय!

[तहव्वरखॉका प्रवेश ।]

तहव्वर—शाहजादा साहब! भागिए भागिए।

चौथा दृश्य।



स्थान—युद्धभूमिमें रजियाका डेरा।

समय—रात्रि।

[पानी वरसता है, हवा चलती है, विजली चमकती है, और वादल गरजता है।]

रजिया गारही है।

गीत।

गगनमें घोर घटा घनकी घेर आई है।
प्रलयकी ऐसी ॲधेरी जगतमें छाई है॥
फुहार लेके झकोरे हवाके चलते हैं।
ये आँधी पानीकी कैसी विकट लड़ाई है॥
गरज रहे हैं ये वादल जो गड़गडाहटसे।
चमकसे विजलीकी दिलमें दहल समाई है॥
प्रचण्ड अघड आँधी हुई है पगली सी।
गगनसे उठके ये धरतीकी ओर धाई है॥
विखेर वालोंको यह अट्टहास करती सी।
अवाज 'हा हा' की करती वलन्द आई है॥
चमकसे कौंधेकी ऑखें हैं चौंधियाई सी।
ये कडकडाती है विजली! खुदा, दोहाई है!

रजिया—ओः! या खुदा! यह कैसा शोरगुल है! फौजकी चिल्लाहट! तोपोंका गरजना! जंगी वाजोंकी धमाचौकडी!—एकाएक यह क्या होने लगा! कान जैसे फटे जा रहे हैं!

(कानोंमें हाथ लगाना।)

[अकवरका प्रवेश।]

रजिया—कौन? अव्वा?

अकवर—हाँ रजिया!

रजिया—ओः ! आप तो सिरसे पैरतक तरबतर हो रहे है ! बाहर यह क्या हो रहा है ! इतना शोरगुल क्यो मचा हुआ है !

अकबर—जंग हो रहा है । राजपूतोंने हमारी छावनी पर छापा मारा है ।

रजिया—छापा मारा है सो तो खैर, लेकिन ये इतना बेसुरे चिल्लाते क्यों हैं ?

अकबर—तू नहीं समझ सकती रजिया कि मामला कितना बेढब है । ओः ! एक पर एक करके हजारों लाशें गिर रही हैं !

रजिया—सो तो समझी । लेकिन मै यह पूछती हूँ कि इतना चिल्लाते क्यों हैं ?

अकबर—क्या बकती है रजिया—यह खास मौतका सामना है ! मौतको इतने नजदीकसे मैंने कभी नहीं देखा !—ओः ! तुझे खबर है कि बाहर कितने लोग मर रहे हैं ?

रजिया—इसीसे भाग आये हो अब्बा ! डर लगता है ! डर क्या है अब्बा !

अकबर—शायद आज मुझे और तुझे भी मरना पडेगा ।

रजिया—अगर मरना ही होगा तो गाते गाते मरूँगी ! किनारेसे टकराई हुई लहरकी तरह ही गाते-गाते मौतमें मिल जाऊँगी !

अकबर—(कान लगाकर) यह क्या ! बार बार राजपूतोंका ही 'जय जय' का नारा बलन्द हो रहा है !—वे दुश्मन लोग पास ही आगये !

नेपथ्यमें—जय, महारानीकी जय !

[तहव्वरखाँका प्रवेश ।]

तहव्वर—शाहजादा साहब ! भागिए भागिए !

अकबर—क्यों तहव्वरखाँ ?

तहव्वर—हमारी हार हो गई।

अकबर—हमारी फौज क्या कर रही है।—सब मर गई!

तहव्वर—नहीं, सब नहीं मरी। ऐसी हालतमे, ऐसे मौके पर समझदार लोग जो करते हैं वही वे लोग भी कर रहे है;—दुश्मनोको पीछे छोड़कर—सिर पर पैर रखकर—भाग रहे हैं।

रजिया—भाग रहे हैं! यह क्या! भागते क्यो हैं? तहव्वरखाँ, राजपूतोंसे हारकर भागनेमें शर्म नहीं आती!

तहव्वर—उनको शर्म काहे की! वे तो औरत नहीं है, जो शरमाएँ।—भागिए शाहजादा साहब, अभी वक्त है।

रजिया—मैं नहीं भागूँगी। भागूँ क्यो? न होगा मर जाऊँगी। अब्बा! तुम मुगल होकर, किस मुँहसे भागोगे?

तहव्वर—जिस तरफ जंग हो रहा है उस तरफसे ठीक उल्टा मुँह करके। और किस मुँहसे भागा जाता है?

रजिया—मैं नहीं भागूँगी।

तहव्वर—आप न भागिएगा तो हम ही भागें। आप औरत हैं—आपको शायद कुछ शर्म हो, लेकिन हमको भागनेमें कुछ शर्म नहीं है!—क्यों न शाहजादा साहब!

अकबर—ओः! कैसी खतरनाक रात है! कैसी हाय हाय मच रही है! कैसी मारकाट हो रही है!

बाहर—भागो, भागो! जय रानीकी जय! हरहर बमबम!

रजिया—ओः, कैसा शोरगुल है!

तहव्वर—क्या सोच रहे हो शाहजादा साहब! चलिए, आइए! आप तो मुझे औरतोंसे भी निकम्मे देख पड़ते हैं!

अकबर—ओः कैसी मारकाट मची हुई है ! इतनी मारकाट मैंने कभी नहीं देखी ।

तहव्वर—यो खड़े रहनेसे क्या होगा ।—यह—यह—देखिए, डेरेके दरवाजे पर—इस तरफकी राहसे—वह दुश्मन—

(तहव्वरखाँका भागना ।)

अकबर—चलो चलें रजिया !—हम भी भाग चलें ।

रजिया—अब्बा !

अकबर—चुप, इधरसे—इधरसे चुपचाप चली आ ।

(रजियाको लेकर अकबरका प्रस्थान ।)

[दो राजपूत सिपाहियोंका प्रवेश ।]

१ सिपाही—कोई नहीं है—भाग गये । किधरसे भागे !

२ सिपाही—इधरसे—

(सिपाहियोंका प्रस्थान ।)

[समरदास और राजपूत सेनाका प्रवेश ।]

समर०—बोलो—भगवान् एकलिंगकी जय ।

सब—जय, भगवान् एकलिंगकी जय !

समर०—भीमसिंह कहाँ है ?

१ सिपाही—वे देख नहीं पड़ते ।

समर०—जाओ, उनका पता लगाओ ।

(समरदासके सिवा सबका प्रस्थान ।)

समर०—ओह कैसी रात है ! कैसा युद्ध है ! कैसा भयानक हत्याकाण्ड है !

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—मेवाड़का एक पहाडी किला। तालावके किनारे दो पत्थरके चबूतरे।

समय—चाँदनी रात।

[कमला एक चबूतरेपर अकेली बैठी गा रही है। जयसिंह अलक्षित भावसे प्रवेश करके पीछे खड़े हो गाना सुनते हैं।]

गीत।

आओ आओ हृदयमें सखा प्राणके, यह जुदाई बहुत दिनकी होवे खतम।
दे दरस, प्रेम-पीयूप-रस सींचकर प्यास प्यासे हृदयकी बुझाओ बलम॥
वनके फूलोंकी फैली महक हरतरफ, जैसे उससे हैं आकुल हुए कुंजवन।
गूँजती वनमें है मर्मराहट भली, नाचती पत्तियाँ वायुसे दमबदम॥
चल रही है हवा चाल धीमी किये, गारही मस्त कोयल कुहू-तानसे।
देखता शुभ्रशोभा शरत्कालकी चन्द्रमा भी गगनमें गया जैसे थम॥
चाँदनी रात कैसी भली है अहो, कैसे तारे चमकते हैं आकाशमें।
कैसी सुंदर है चुपचाप पृथ्वी अहो, कुंज कैसे हैं नीरव न नन्दनसे कम॥
बैठी चंचल मैं अंचल बिछाये हुए काँपती नाथ शंकासे व्याकुल हुई।
आओ प्रियतम, हृदयको है धीरज नहीं, लाख देती दिलासा न माने बलम॥

कमला—(फिरकर) कौन?—तुम हो!

जयसिंह—हाँ मैं हूँ।

कमला—कितनी देरसे खड़े हो?

जय०—बड़ी देरसे खड़ा हूँ।

कमला—खड़े खडे क्या कर रहे थे?

जय०—सुन रहा था।

कमला—क्या?

जय०—सुनता था वीणाकी ध्वनिके साथ मृदंग!—क्या सुनता था? क्या सुनता था, सो तो ठीक बता नहीं सकता, किन्तु जो सुन रहा था उसे पहले कभी नहीं सुना था।

कमला—समझी । तुम मेरा गाना सुन रहे थे ।

जय०—गाना ही होगा । मैं तो अबतक इस लोकमे था नहीं—जैसे किसी स्वप्न-राज्यमे था । किन्तु सुनता था?—या देखता था?—शायद देखता था कि कुछ सुन्दर किशोर स्वर अपने उज्ज्वल पख फैलाकर आकाशमे विचर रहे हैं । अन्तको वे स्वर और भी घने होकर, और भी मंद होकर, और भी उज्ज्वल होकर एक एक करके नक्षत्रोंमें लीन हो गये !

कमला—अपनी यह कविता रहने दो ! तुम्हारी इस कविताका एक अक्षर भी मेरी समझमें नहीं आता । सीधी बोलचालमें कहो तो कुछ समझमें भी आवे ।

जय०—कमला ! तुम यह हृदयसे गा रही थीं ? या जो कुछ याद आगया वही गा रही थीं ?

कमला—तुम्हे क्या जान पडता है ?

जय०—मैं भी ठीक नहीं कह सकता । हॉ, बीचबीचमें यह जरूर जान पड़ता है कि तुम कोई जादू जानती हो, तुमने मुझ पर जादू कर दिया है ।

कमला—जादू करनेकी कोई जरूरत नहीं । तुम खुद ही जादू हो ।

जय०—मैं बिलकुल ही निर्जीव, निस्तेज, निकम्मा हो गया हूँ ।—यह क्या प्रेम है ? या मोह है ?

कमला—चाहे जो कहो, फल एक ही देख पड़ता है । तुम मेरे तावे हो !

जय०—अगर यह प्रेम है तो बडा ही भयानक है !

कमला—भयानक है ?

जय०—भयानक नहीं है ? जो प्रेम उत्साह, और तेज मिटा कर मनुष्यको ज्ञानशून्य बना देता है वह भयानक नहीं तो क्या है ? जिस प्रेममें मनुष्य सारे विश्व-ब्रह्माण्डको भूल जाता है—अपने मनुष्यत्वको गवाँ देता है वह प्रेम—वह अवस्था—निस्सन्देह भयानक है !

कमला—बेशक! यह बहुत ही भयानक है! रोग कठिन है! इसकी दवा करनी चाहिए। बडी रानीको बुला दूँ क्या ? वे ही तुम्हारे इस रोगको दूर कर सकती है। देखो न, उसदिन दो चार सख्त बातें कहकर उन्होंने तुमको युद्धमें भेज दिया। बुलाऊँ ?

जय०—नहीं कमला! इस रोगकी दवा वह भी नहीं कर सकती। यह रोग असाध्य हो गया है—इसे कोई अच्छा नहीं कर सकता। सुनो कमला—मारवाड़ पर बादशाह औरंगजेबने चढ़ाई की है। पिताजीने उस दिन मुझे बुला भेजा था। मेरे पहुँचने पर उन्होंने कहा—"जाओ पुत्र! दुर्गादासकी सहायता करो।" मैं सिर झुकाकर रह गया। उन्होंने कहा—"क्यों जयसिंह! चुप क्यों रह गये ?" मै फिर भी सिर झुकाये रहा। तब उन्होंने कहा—"समझा, अच्छा महलोंमें जाओ, मैं भीमसिंहको भेजता हूं।" सिर झुकाये चला आया। पीछेसे सरस्वतीने आकर बड़ी फटकार बताई। मैंने कुछ नहीं कहा। मनमें अपने ऊपर धिक्कारका भाव पैदा हुआ!—मुझे तुमने यह क्या कर दिया कमला! तुमने मुझे कैसे मोहमें डाल रक्खा है!—कैसे नशेमें बेहोश बना रक्खा है!

कमला—किन्तु मैंने तो कुछ तुमको खिलाया-पिलाया भी नहीं। —धर्मकी सौगन्द! तुम मुझे नाहक दोष लगाते हो।

जय०—नहीं कमला, मै तुमको दोष नहीं लगाता!—एक दिन मैंने तुमसे पूछा था कि "रूप क्या मदिरा है?" किन्तु इस समय देख पड़ता है कि रूप—

कमला—अफीम है! मैंने भी यही उस दिन कहा था, लेकिन तुमने विश्वास नहीं किया।

जय०—कमला, मैं तुमको चाहता हूँ।

कमला—यह तो कई बार सुन चुकी हूँ।

जय०—बार बार कह कर भी तृप्ति नहीं होती। इसीसे फिर कहता हूँ कि तुमको चाहता हूँ। यह कहना मुझे बहुत अच्छा लगता है।

कमला—तो फिर जितनी दफा जी चाहे, कहो। पर मुँहसे चाहे जो कहो, काम तो तुम बडी रानीके कहनेके माफिक ही करते हो।

जय०—मैं!

कमला—नहीं तो क्या मैं!—मुझे तुम्हारा जबानी प्यार मिलता है, और काम निकाल लेती हैं बड़ी रानी।

जय०—कैसे?

कमला—क्या तुम नहीं जानते? कहनेकी क्या जरूरत है!

(रूठकर चल देना।)

जय०—सुनो कमला!—नहीं। यह स्त्रियोंका दमभरका रूठना है। परमेश्वर, तूने यह कैसी अपूर्व जाति तैयार की है! रोना और हँसी—वर्षा और धूप—कैसी अपूर्व सृष्टि है!

[सरस्वतीका प्रवेश।]

सर०—नाथ!

जय०—सरस्वती।

सर०—मारवाड़में मुगलों और राजपूतोंकी लड़ाईका फल सुना?

जय०—नहीं।

सर०—सुनना चाहते हो? अवकाश है?

जय०—कहो।

सर०—लड़ाईमें मारवाड़की जीत हुई। लेकिन—

जय०—लेकिन?—

सर०—लेकिन तुम्हारे भाई अब इस संसारमें नहीं हैं!

जय०—कौन, भीमसिंह?

सर०—(गद्गदस्वरसे) हाँ उन्होंने मारवाड़की रक्षाके लिए इस युद्धमें प्राण अर्पण कर दिये!

जय०—महत् उदार वीर भाई! तुम अक्षय-स्वर्गको गये।

सर०—और तुम?

जय०—शायद नरकको!

सर०—हाय नाथ! (प्रस्थान।)

जय०—सरस्वती! मुझसे घृणा न करो। मैं दयाका पात्र—असमर्थ—हूँ!—वे पिताजी आरहे हैं। साथमें मारवाड़की रानी और समरदास हैं! पिताकी तिरस्कार और करुणासे पूर्ण दृष्टि मेरे लिए असह्य होगी। (प्रस्थान।)

[राजसिंह, रानी और समरदासका प्रवेश।]

राज०—यहीं पर बैठो रानी! भीतर बड़ी गर्मी है—इसी जगह चाँदनीमें बैठो—यह स्थान भीमसिंहको बहुत प्यारा था। वह सबेरे यहाँ आकर बैठता था और एकाग्र होकर इस नील-सरोवरकी शोभा देखा करता था।

(सबका शिला पर बैठना।)

रानी—रानाजी! भीमसिंहकी वीरताका वर्णन इतिहासमें सोनेके अक्षरोंसे लिख रखनेकी चीज है।

राज०—मैंने उसे खो दिया—सदाके लिए गवाँ दिया!

रानी—रानाजी! युद्धमे मरनेसे बढकर क्षत्रियके लिए गौरवकी मृत्यु और कौन हो सकती है? भीमसिंह अगर मेरा पुत्र होता, तो मै उसकी और तरहसे मृत्यु कभी न चाहती।

राज०—तुम सच कहती हो महामाया।—कहो समरदास! भीमसिंहने कैसा युद्ध किया!

समर०—वैसा युद्ध आजतक किसीने न किया होगा राना साहब! सुनिए—उस दिन रातको घोर अन्धकार था, आकाशमे बादल घिरे हुए थे, मूसलधार पानी पड़ रहा था। ऐसा घना अन्धकार था कि हाथको हाथ नहीं सूझता था। बारबार बिजली चमकनेसे उस अँधेरी रातकी भयकरता दिख जाती थी। बिजलीकी कड़क उस भयकरताको और भी बढा रही थी। उः—कैसी भयानक रात थी!

रानी—उसके बाद?

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) ऐसी रात थी!—ऐसी रात थी!

समर०—उसी भयानक रातमे आपके वीर कुमारने, हम लोगोंके बारबार मना करने पर भी, केवल १०००० मेवारकी सेना लेकर मुगलोंकी छावनी पर धावा कर दिया—मुगलोंकी सेना एक लाखसे भी अधिक होगी!

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) मैंने उसे निकाल दिया था—उसे निकाल दिया था।

रानी—धन्य सिसोदिया-कुमार! उसके बाद?

समर०—उसके बाद "हरहर—बमबम" के सिंहनादने उस बिजलीकी कडकको भी मात कर दिया और शत्रुसेनाके आर्तनादमें पानी बरसनेका शब्द लीन हो गया।

राज—(उद्भ्रान्त भावसे) मैंने अपने ही दोषसे उसे खो दिया।—

रानी—फिर ?

समर०—तब मै १०००० राठौर सेना लेकर भीमसिंहकी सहायताके लिए गया। जाकर देखा—उस बिजलीके प्रकाशमें जो दृश्य मैंने देखा उसे कभी नहीं भूल सकता रानासाहब!

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) उस दिन उसने कहा था—कुँअरने उस दिन कहा था-कि युद्धमें प्राण देने जाता हूँ।

रानी—कहो समरसिंह।—

समर०—महारानी! बिजलीके प्रकाशमें देखा कि शत्रुओंकी सेना बन्दूक, तरवार, भाले वगैरह लिये घूमकर खड़ी हुई है। भीमसिंहकी सेना एक विश्वग्रासी प्रलयकी बढ़ियाकी तरह उसके ऊपर जा पड़ी। वैसे ही शत्रुओंकी तोपों और बन्दूकोंसे अग्निवर्षा होने लगी! क्या कहूं, वह कैसा घोर युद्ध था!—मुझे तो वह ज्वालामुखीकी उगली हुई ज्वालाके साथ ववडरका युद्ध जान पड़ा था!

रानी—धन्य भीमसिंह!—उसके बाद ?

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) रूठकर चला गया। पितासे रूठकर पुत्र चला गया।

समर०—उस समय भीमसिंह मुझे बिजलीके प्रकाशमें उन्मत्तके समान—साक्षात् प्रलयके समान—देख पडे। जहाँ पर शत्रुओंकी संख्या अधिक होती थी वहीं भीमसिंह देख पड़ते थे! उनकी १०००० सेना दस लाख जान पडती थी—अकेले भीमसिंह दस सेनापतियोंके बराबर काम कर रहे थे!

रानी—भीमसिंह! तुम अगर मेरे पुत्र होते!

राज०—(लम्बी साँस लेकर) रूठकर चला गया।

रानी—उसके बाद ?

समर०—इसी समय राठौरोकी सेना भी मेवारकी सेनाके पास सहायताके लिए पहुँच गई। हमारी सेनाके पहुँचते ही शत्रुओकी सेना तितर-बितर होकर जान लेकर भागी । हम लोगोने बहुत दूरतक शत्रुओका पीछा किया ।

रानी—फिर ?

समर०—पडाव पर लौटकर आया, वहाँ भीमसिंह नही देख पडे ! दूसरे दिन सबेरे उनकी लाश युद्धभूमिमें देख पडी ।

रानी—रानासाहब, आपके पुत्रने आज स्वदेशकी रक्षा की ।

राज०—भीमसिंह ! भीमसिंह ! पुत्र—पुत्र !(मूर्च्छित हो जाते है ।)

छठा दृश्य ।



स्थान—मुगलोंका पडाव ।

समय—दोपहर ।

[शाहजादा अकबर और तहव्वरखाँ ।]

अकबर—क्या कहते हो तहव्वरखाँ ! लड़ाईमें हम लोगोंकी पूरी हार हुई ।

तहव्वर—पूरी हार हुई ! इस बारेमें जरा भी भूल नहीं ।

अकबर—ये राजपूत कैसे बहादुर होते हैं ! तोपके गोलेको दोस्तकी तरह बुलाते है, तरवारको माशूककी तरह गले लगाते हैं ।

तहव्वर—लेकिन उनकी तरवार ठीक माशूककी तरह आकर हमारे गलेसे लगती है, यह तो मैं नहीं कह सकता शाहजादा साहब ! बल्कि यह कहना ठीक होगा कि रडीकी तरह आकर एकाएक गले पड़ती है ।

अकबर—कैसी जात है ! कैसी हिम्मत है ! कैसा जोश है !

तहव्वर—यह जात है तो अच्छी, लेकिन एक ऐब है शाहजादा साहब !—जान बचानेका मौका नहीं देती। एकदम धावा करके मरने-मारनेको तैयार हो जाती है। देखिए न, कल रातको बेफिक्र होकर डेरेमें सो रहा था। बाहर आँधी और पानीकी हलचल मची हुई थी। ऐसे वक्तमें कोई भला आदमी घरसे निकलनेकी हिम्मत नहीं कर सकता। लेकिन इन बलाके बने हुए राजपूतोंने आँधी-पानीकी कुछ पर्वा नहीं की। उसी आँधी-पानीमें धावा करके हमारी छावनीमें घुस पड़े। बर्छी, तरवार, भाले वगैरह लेकर न आते तो मैं समझता कि दिल्लगी कर रहे हैं !

अकबर—सुभानअल्लाह ! कैसी बहादुरी और दिलेरीके साथ धावा किया !

तहव्व०—और हमारी फौज भी किस खूबसूरतीसे भागी! सुभान-अल्लाह ! ऐसी अँधेरी रातको इस तरह भागे कि कोई ठोकर खाकर भी नहीं गिरा—यह क्या कम तारीफकी बात है?

अकबर—लेकिन इस हारका हाल सुनकर अब्बाजान क्या कहेंगे?

तहव्वर—सो तो मैं ठीक ठीक नहीं बता सकता। लेकिन यह तय है कि मिठाई खानेको न देंगे। मुझसे तो चलते वक्त खूब साफ और सही उर्दूमें कह दिया था कि अगर इस लड़ाईमें मैं हारकर गया तो मेरे दोनों हाथोंमें दो लोहेकी चूड़ियाँ पहना देंगे। यह ठीक ठीक नहीं मालूम कि लहँगा भी पहनाएँगे या नहीं।

अकबर—दिल्लगी रहने दो।—अब क्या किया जाय? राजपूतोंसे लड़कर जीतनेकी तो उम्मेद नहीं है।

तहव्वर—बेशक। और इस जातसे लड़ना भी मेरी समझमें ठीक नहीं।

अकबर—क्यों ?

तहव्वर—ये लोग लड़ना ही नहीं जानते । उस दिन मेवाड़में देखा था ? खाना-पीना बन्द करके मारनेका ढंग सोच निकाला । यह किस किताबमें लिखा है ? उसके बाद यहाँ लड़ाई छिड़नेके पहले ही धावा कर दिया । अरे भाई लड़ना हो तो लड़ो । तरवार लो, दो दफा आगे बढ़ो, दो दफा पीछे हटो, पैंतरे दिखाओ, चक्कर काटो । यह क्या कि एकदम आकर एक तरफसे काटना शुरू कर दिया ! जैसे हमारे सिरोंको बेवारिसी माल समझ लिया ।

अकबर—नहीं तहव्वरखाँ ! इस जातके ऊपर जितना ही मैं गौर करता हूँ उतना ही इनकी मुखालफत करनेको जी नहीं चाहता !—इन लोगोंकी मदद मिले तो मैं सारी दुनियामें अपना सिक्का चला सकता हूँ ।

तहव्वर—इन लोगोंकी मदद मिलनेसे आप सिक्का चला सकते हैं, न मिलनेसे तो नहीं !—अच्छा एक काम तो आप कर सकते हैं ?

अकबर—क्या ?

तहव्वर—ऐं—यह तो बहुत ही सहल काम है । अभीतक मुझे सूझा ही नहीं ।—बहुत ही सीधा काम है । यह तो कुछ मुश्किल ही नहीं है ।

अकबर—क्या ! क्या !

तहव्वर—मैं जितना सोचता हूँ, उतना ही सहज जान पड़ता है ! सुनिए—आप बादशाह होना चाहते हैं ?

अकबर—किस तरह ?

तहव्वर—किस तरह ?—इतना छिपनेसे काम नहीं चल सकता ।—पहले यह कहिए कि आप चाहते हैं या नहीं ?

अकबर—हाँ, चाहता हूँ।

तहव्वर—मगर बादशाहत क्या गली गली मारी मारी फिरती है?

अकबर—तुम्हीं तो कहते हो।

तहव्वर—विना कोशिशके कुछ नहीं हो सकता। सुनिए, बादशाहत पानेका एक बहुत ही सहल ढग है।

अकबर—क्या! क्या!

तहव्वर—यही राजपूतोकी जात—हाः हाः हाः—है न बहुत सहल?

अकबर—किस तरह?—बहुत ही सहल है!

तहव्वर—बहुत ही सहल है!—बकौल आपके राजपूतोकी कौम बहुत अच्छी और जोरावर है। मान लीजिए, ये लोग अगर औरंगजेबको उतारकर आपको तख्त पर बिठा दें। कुछ हर्ज है? हमारी फौज और राजपूतोकी फौज अगर दोनों मिल जायँ—

अकबर—मैं भी तो ठीक यही सोच रहा था।—सुभानअल्लाह!

तहव्वर—अरे सुनिए। यह रडीका गाना नहीं है कि बिना सुने ही चिल्ला उठिए—सुभानअल्लाह! अखीर तक सुनिए—सवाल यह हो सकता है कि राजपूत लोग हमारे शरीक होगे या नहीं?—हमारे मारे तो उनका खाना-पीना हराम है!

अकबर—हाँ, यह सवाल तो हो ही सकता है!—एः बना बनाया खेल बिगाड दिया!

तहव्वर—लेकिन इसका जवाब बहुत सहल है।

अकबर—क्या?

तहव्वर—इसका जवाब यह है कि क्यों न शरीक होंगे।

अकबर—वाह बहुत ही सहल जवाब है!

तहव्वर—राजपूत लोग दाराकी तरफसे क्या नहीं लड़े? खुद बादशाह (औरंगजेब) की तरफसे नहीं लड़े ?

अकबर—मैं भी तो वही कह रहा था।

तहव्वर—मगर—

अकबर—फिर मगर!

तहव्वर—लेकिन इस बारेमें इतमीनान कर लेनेकी जरूरत है। मैं कहता हूँ, राठौर दुर्गादाससे यह कहकर उनका मशा दर्याफ्त कर लेनेसे सब साफ हो जायगा।

अकबर—मैं भी तो वही कह रहा था।—बस तो तुम राजपूतोंके पड़ावमें जाओ।

तहव्वर—इस बारेमें मुझे कुछ उज्र है। दुर्गादास अगर उस वक्त उसी तरह तरवार खींचकर नाकके सामने घुमावे—और मुझे धड़ पर सिर न देख पड़े?

अकबर—दुर्गादास तरवार न निकालेगा।

तहव्वर—अगर निकाले?

अकबर—तब कहना—हाँ!

तहव्वर—तब 'हाँ' कहनेकी फुरसत ही कहाँ मिलेगी! अगर मेरा सिर ही कटकर मेरे पैरोंके पास गिर पड़ा तो फिर मैं 'हाँ' कहूँगा किस तरह!

अकबर—तो फिर क्या करना चाहिए?

तहव्वर—एक ढग है। दुर्गादासको यहीं बुलाओ। पहाड़ अगर महम्मदके पास नहीं जा सकता तो महम्मद तो पहाड़के पास आ सकता है।

अकबर—बस—यह भी हो सकता है। मैं भी तो यही—

तहव्वर—यह भी हो सकता है तो यही हो। सब गडबड़ मिट गई न? तो मैं अब जरा नाक बजाने जाता हूँ।

(वन्दगी करके तहव्वरखाँका जाना।)

अकबर—(आप-ही-आप) बुरा क्या है! इसके सिवा मेरे बादशाह होनेकी और कोई तदबीर देख नहीं पडती।—कमसे कम आजिमकी जिन्दगीमें! ओः! कैसा बादल गरज रहा है।

[रजियाका प्रवेश।]

रजिया—अब्बा, बाहर आओ। पत्थर गिर रहे हैं—पत्थर गिर रहे हैं।

अकबर—गिरने दे।

रजिया—देखोगे नहीं! (हाथ पकड़कर खींचती है।)

अकबर—छिः! तू इतनी बडी हुई है! तुझे ढिठाई करते शर्म नहीं मालूम होती? जा।— (उदासभावसे रजियाका प्रस्थान।)

अकबर—देखूँ! किनारे बैठकर लहरें गिननेसे क्या होगा? फाँदकर देखूँ! जो होना होगा, होगा।—रमजान! शराब ला। शीरीजान वगैरहसे उस तंबूमेंसे आनेके लिए कह दे।

सातवाँ दृश्य।

स्थान—मुगलोंका पडाव।

समय—रात्रि।

[मुकुट पहने हुए अकबर तख्त पर बैठे है। सिर पर छत्र लगा है। आसपास दो दासियाँ चँवर कर रही हैं। सामने मुसाहब और गडियाँ है।]

अकबर—मैं बादशाह अकबर नबर दो हूँ।—क्यों न?

१ मुसा०—हाँ।

अकबर—मेरे सिर पर ताज है न?

२ मुसा०—जी हाँ।

अकबर—मेरा झंडा उड़ रहा है न?

३ मुसा०—जी हुजूर, खूब उड़ रहा है—फरफरा रहा है!

अकबर—बस! और कुछ न चाहिए, गाओ।

(बाजा बजता है।)

अकबर—ठहरो—बुड्ढा बादशाह इस वक्त क्या कर रहा है, बतला सकते हो?

१ मुसा०—भाग गया।

अकबर—उँहूँ—वह भागनेवाला नहीं है। वह लड़ेगा। यों छोड़ देगा?—लेकिन लड़े, क्या डर है! मेरी तरफ दुर्गादास है, मैं किसीको नहीं डरता।—तुम लोग जानते हो दुर्गादासको?—उसे बुड्ढा बादशाह भी बहुत डरता है।

२ मुसा०—डरता है! हा· हा· हा!

अकबर—बेहद डरता है!—उस दिन एक तसवीरवाला शिवाजी और दुर्गादासकी तसवीरें बनाकर बुड्ढे बादशाह—यानी मेरे अब्बा औरंगजेब—के पास लाया था। शिवाजीकी तसवीर देखकर अब्बाने कहा—इसको मैं काबूमें ला सकता हूँ, लेकिन यह दुर्गादास बलाका बना हुआ है—यह परेशान करेगा।

२ मुसा०—दोनों तसवीरें किस ढगसे खिंची थीं?

अकबर—शिवाजी तो गद्दीपर बैठे हुए थे, सिर पर ताज था, माथेमें टीका था। लेकिन दुर्गादास घोड़े पर चढ़े हुए बर्छेकी नोकमें छेदकर भुट्टा भून रहे थे।

२ मुसा०—हमको तो सुननेहीसे डर लगता है, फिर बादशाह—

अकबर—बादशाह कौन है?

१ मुसा०—(दूसरे मुसाहबसे) होजी, बादशाह कौन है?

अकबर—बादशाह तो मैं हूँ।

१ मुसा०—जहाँपनाह ही तो बादशाह हैं, खुदावन्द!

अकबर—बस—तो फिर गाओ।

(बाजा बजता है।)

अकबर—हाँ सुनो! दुर्गादास कहाँ गया? कोई जानता है?

३ मुसा०—कहाँ! हम लोग तो नहीं जानते।

अकबर—हाँ ठीक है—उदयपुर गया है।—मगर मुझसे हुक्म लिये बिना क्यों गया? क्यों गया!—मै बादशाह हूँ—यह उसे खबर नहीं?—क्यों गया!

२ मुसा०—हाँ, क्यों गया!

अकबर—हाँ-हाँ! राना राजसिंहकी बीमारीकी खबर पाकर गया है! अच्छा, अबकी उसे माफ कर दिया।

२ मुसा०—हुजूर मा-बाप हैं।

अकबर—मैं बादशाह हूँ।

१ मुसा०—हाँ हुजूर ही तो बादशाह है—और कौन है?

अकबर—बस तो गाओ।

गीत।

आहा क्या माधुरी विराजे।
नन्दन कानन भुवन साजे॥ आहा०॥
उठे रुपरगन, तरग अगन, निरखत दूर हरमकी लाजे—
सुंदर शोभा अनूप गाजे॥ आहा०॥

पॉयन घुँघरुन, रुनझुन रुनझुन, तालताल पै सुरन सोहने वाजे—
मधुर वीना मृदु मृदंग बाजे ॥ आहा० ॥

[इसी बीचमें रजिया आकर दूर पर एक तिपाईके ऊपर दाहने हाथकी कोहनी रखकर—दाहनी हथेलीपर ठोडी रखकर—गाना सुनती है ।]

अकबर—सुभानअल्लाह! अगर बहिश्तमें यह सामान हो तो बेशक वह ऐश-आरामकी जगह है ।

रजिया—भूपालीमें तो कडी-मध्यम नहीं लगती ।

अकबर—रजिया! तू यहाँ कहाँ?

रजिया—होगी, मिश्रभूपाली होगी—अब्बा! अम्मी बुला रही हैं!

अकबर—तेरी अम्मीके बापका सिर! बुलानेका क्या यही मौका था?—ए: सब मिट्टी कर दिया!

मुसाहब—सब मिट्टी कर दिया, जहाँपनाह, सब मिट्टी कर दिया!

अकबर—जा, भीतर जा।—तुझे शर्म नहीं लगती!—यहाँ भरे दरबारमें मौजूद हो गई!

रजिया—अम्मी बुला रही हैं, उनकी तबीयत बहुत बेचैन है।

अकबर—तो इससे क्या!—तबीयत अच्छी नहीं तो हकीमको बुलाओ। मैं क्या करूँगा!—मैं अभी न चलूँगा।

रजिया—उनकी जान निकल रही है। उन्होंने कहा है—"रजिया! तू उनसे जाकर कह कि मैं मरनेसे पहले एक बार उनको देखना चाहती हूँ।"

अकबर—देखना! यह कैसे हो सकता है!—सब मिट्टी कर दिया! —मरनेके लिए क्या और वक्त न था! जा—ए! तुममेंसे कोई इसे भीतर पहुँचा आओ!—ए! कोई है?

[दरबानका प्रवेश ।]

अकबर—इसको भीतर पहुँचा दे।—खींचकर ले जा—देख क्या रहा है!—

दरबान—(रजियाका हाथ पकड़कर) चलिए शाहजादी!

रजिया०—खबरदार।—अब्बा, यह आप अपनी लड़कीकी बेइज्जती करा रहे हैं!

अकबर—कुछ नहीं। मेरा हुक्म है!

रजिया—तुम्हारा हुक्म है!—अब्बा!—

(अपमानसे रुआसी होकर रजियाका प्रस्थान।)

अकबर—सब मिट्टी कर दिया! सब मिट्टी कर दिया!—ऐं—गाओ—नाचो—

[फिर बाजा बजाता है। इसी समय तहव्वरखाँका प्रवेश।]

अकबर—कौन! तहव्वरखाँ? सिपहसालार?

तहव्वर—शाहजादासाहब—

अकबर—ए! शाहजादा क्या? कहो 'बादशाह'—'जहाँपनाह'—इधर नहीं देखते? (छत्र दिखलाना।)

तहव्वर—देखता क्यों नहीं हूँ!—मैं इधर देखता हूँ। आप जरा उधर जाकर देखें!

अकबर—क्यों! उधर क्या हुआ?

तहव्वर—उधर राजपूत लोग आपका साथ छोडकर चले गये।

अकबर—छोडकर चले गये! तहव्वरखाँ! तुमने क्या कुछ नशा पिया है? चण्डू पिया है या ताड़ी? राजपूत लोग छोड़कर चले गये! यह भी कहीं हो सकता है?

तहव्वर—हो सकता हो या न हो सकता हो, लेकिन हुआ वही है। घोड़ेकी किश्त बाजी मात।

अकबर—कैसे ?

तहव्वर—शाहजादासाहब ! राजपूतोंको किसीने यकीन करा दिया है कि आप बादशाहसे मिल गये है।

अकबर—अरे बादशाह कौन है और शाहजादा कौन है?—ए: ! तुमने आकर सब मिट्टी कर दिया !

तहव्वर—बाहर आकर तो देखिए—एक भी राजपूत नहीं है, सब मिट्टी हो गया !

अकबर—कहते क्या हो !—और हमारी फौज ? (बाजे बजानेवालोंसे) अरे, चुप रहो ।

तहव्वर—बादशाहसे मिल गई है।

अकबर—दगा ! दगा ! तहव्वरखाँ, यह तुम्हारी ही जालसाजी है।

तहव्वर—शाहजादा साहब, आप शराब बहुत पी गये हैं। मेरी जालसाजी है ! पराये असगुनके लिए अपनी नाक कटाना ? मेरी गर्दन तो पहले मारी जायगी !—बस अब बाजी सँभालिए ! घोड़ेकी किश्त बाजी मात होती है !

अकबर—मैं समझ गया, यह तुम्हारा ही फरेब है।—पकड़ो, ए कोई है ?

तहव्वर—हा: हा: हा: हा: ! इस वक्त कौन किसे पकड़नेवाला है शाहजादा ! और मुझे मार डालनेसे भी आपकी जान नहीं बच सकती !—एक बात सुनिए ! मैंने एक ढग सोचा है । बीकानेरके राजाके पाससे मुझे एक खत मिला है कि अगर अब भी बादशाहके सामने हाजिर होकर माफी माँगिएगा तो माफी मिल जायगी । यही कोशिश करके न देखिए । चलिए बादशाहके पास चलें।

अकबर—अब्बाके पास !

तहव्वर—बुरा क्या है! मुझे अपनी गर्दनकी कुछ ज्यादह पर्वा तो है नहीं। फिर भी देखूँ खींच खाँचकर किसी तरह उसे बनाये रख सकता हूँ या नहीं। कोशिश करके देखना बुरा क्या है! (प्रस्थान।)

अकबर—यह क्या हुआ! राजपूत लोग तो दगाबाज नहीं होते! —वे भरोसा देकर छोड़ देंगे!—सब मिट्टी कर दिया। (मद्यपान) ए, कौन है!—कुछ पर्वा नहीं—नाचो—गाओ—

(फिर बाजा बजता है।)

आठवाँ दृश्य।

स्थान—अजमेर। औरंगजेबके महलकी बाहरी बैठक।

समय—रातके दस बजे।

[औरंगजेब लेटे हुए हैं। सामने दिलेरखाँ खड़े हैं।]

औरंग०—दिलेरखाँ! राजपूतोंके पड़ावसे और कुछ खबर पाई है?

दिलेर०—उनकी तोपोंकी दिल दहलानेवाली आवाजके सिवा और कुछ नहीं सुना। आवाज धीरे धीरे पास आती जाती है और साफ सुन पड़ती है।

औरंग०—उनके इस इरादेका मतलब?

दिलेर०—मतलब तो कुछ बहुत अच्छा नहीं जान पड़ता।

औरंग०—अकबर! अकबर!—मुझे तख्तसे उतारकर तुम खुद बादशाह बनना चाहते हो? एक दिन तुम ही बादशाह होते!—तुम्हारे लिए इतनी कोशिश, इतनी मेहनत, इतना खर्च, सब बेकार हुआ।—दिलेरखाँ! मैंने यह कभी सोचा भी न था!

दिलेर०—मालूम नहीं, आपने क्यों नहीं सोचा। अकबर तो बादशाही चाल ही चले हैं! हाँ, यह अभीतक नहीं मालूम हुआ कि वह

मौजम, आजिम और कामबख्शके साथ भी बादशाही बरताव करेंगे या नहीं।

औरंग०—दिलेरखाँ! मैं यही चाहता हूँ कि जिस खून-खराबेको करके मुझे बादशाह बनना पड़ा है वह फिर न हो।

दिलेर०—मैं देखता हूँ, हुजूरकी राय इतने ही दिनोंमें बहुत कुछ बदल गई है।—आहा! अगर बादशाह सलामतके बुजुर्गवार बादशाह शाहजहाँ अगर इस वक्त जिन्दा होते तो वे बहुत ही खुश होते।

औरंग०—जबान सँभालकर बात करो दिलेरखाँ!

दिलेर०—किस लिए हुजूर? दिलेरखाँ सच बोलनेमें कहीं नहीं हिचकता! आप क्या यह समझते हैं कि अगर हुजूर अपने बापसे वैसा सलूक न करते तो भी अकबरको आज यह बात सूझती?—जहाँपनाह! मैं आपका दोस्त हूँ—मेरी बात मानिए। अब भी अच्छे काम करके पहलेके गुनाहोंको खुदासे माफ करानेकी कोशिश कीजिए। जिजिया बंद कर दीजिए। हिन्दुओंको दोस्त बनाइए। और क्या कहूँ—जनाब! सब फसादोंकी जड़ जो यह काश्मीरी बेगम है उसे दूर कीजिए। नहीं तो अपने कियेका फल भोगनेके लिए तैयार रहिए। (प्रस्थान।)

औरंग०—(आप-ही-आप) बात तो सच है। सच बात तो कड़ुवी होती ही है। सच है। जो कर चुका हूँ, वही फिर होते देख पड़ता है।—दारा! भोले भाले साफ दिलके भाई दारा! माफ करो। मैंने बड़ा जुल्म—बड़ी बेदर्दी—की है।—लेकिन जो कुछ किया सो दीन इस्लामके लिए—खुदा गवाह है!

[श्यामसिंहका प्रवेश।]

औरंग०—क्या खबर है राजासाहब?

श्याम०—सब ठीक हो गया जहाँपनाह ! राजपूतोंने अकबरका साथ छोड दिया !

औरंग०—किस तरह ?

श्याम०—राजपूत लोग अपने अपने घोड़ोंपर चढकर जोधपुरकी ओर चल दिये—मैंने अपनी आँखों देखा है । शाहजादा अकबर नाच-गानमे मशगूल थे, उन्हें मालूम भी नहीं हुआ ! वे अभीतक बेहोश है !

औरंग०—यह सब कैसे हुआ ?

श्याम०—हुजूर भूल गये ? बन्देकी सलाहसे जहाँपनाहने अकबरके नाम जो खत लिखा था—

औरंग०—कौन खत ?

श्याम०—वही, जिसमें लिखा था कि 'शाहजादे अकबर, तुम्हारी यह राय बहुत ठीक है कि राजपूत लोग जब शाही फौज पर धावा करेंगे तब तुम पीछेसे उन पर धावा कर दोगे ।' वह खत मैने सेनापति दुर्गादासके भाई समरदासके हाथमे देनेके लिए आदमीसे कह दिया था । राजपूतोने उस चिट्ठीकी बात पर विश्वास कर लिया है । यह समझकर कि राजपूतोंसे अकबरका मेल करना भी बादशाहकी चाल है, उन्होंने अकबरका साथ छोड दिया है ।

औरंग०—सच राजासाहब ? मुझे यह ख्याल न था कि राजपूत लोग उस चिट्ठी पर यकीन लावेंगे । दुर्गादासने भी यकीन कर लिया है ?

श्याम०—दुर्गादास नहीं थे । वे राजसिंहकी बीमारीकी खबर पाकर उदयपुर गये है ।

औरंग०—और तहव्वरखाँ ?—उसकी क्या खबर है ?

श्याम०—तहव्वरखाँ कैद कर लिया गया है। उसको मैंने चिट्ठी लिखी थी कि 'तुम अब भी अगर बागियोंका साथ छोड़कर अपनी फौज साथ लेकर हुजूरके पास आओगे और माफी माँगोगे तो वे माफ कर देंगे।' उस पर विश्वास करके वह मुगलोंके पड़ावमें आया था। शाहजादा आजिमने वैसे ही उसे कैद कर लिया।

औरंग०—राजासाहब! मैं आपके इस कामसे हमेशा आपका एहसानमन्द रहूँगा।

श्याम०—यह हुजूरकी इनायत है।

औरंग०—वह बाहर काहेका शोरगुल हो रहा है?

श्याम०—देखता हूँ। (शंकित भावसे प्रस्थान।)

औरंग०—यह क्या! शोरगुल बढता ही जाता है।—हथियारोंकी झनकार! यह क्या! बन्दूककी आवाज!—दरबान!

[खूनसे तर तहव्वरखाँका प्रवेश।]

औरंग०—तहव्वरखाँ!

तहव्वर०—हाँ जहाँपनाह! (बादशाहकी तरफ पिस्तौल तानता है।)

दिलेरखाँ—(प्रवेश करके) खबरदार!

[तहव्वरखाँ एक बार घूमकर देखता है और फिर बादशाहकी खोपडी पर पिस्तौल तानता है। दिलेरखाँ पिस्तौल दागकर तहव्वरखाँको गिरा देता है।]

औरंग०—दगाबाज नमकहरामको सजा मिल गई! नमकहराम कुत्ता!

दिलेर०—मर गया जहाँपनाह! गाली एक भी न सुन सका।

औरंग०—दिलेरखाँ! तुमने आज मेरी जान बचाई।

दिलेर०—जहाँपनाह! इसमें तअज्जुब क्या हुआ! आपकी जान बचानेके लिए ही तो तनख्वाह पाता हूँ।

औरंग०—दिलेरखाँ! तुमको अलग करके इस पठानको मैंने सिपहसालार बनाया था।—उसका यह नतीजा! मुझे माफ करो दिलेरखाँ।

दिलेर०—जहाँपनाह! मै आपका एक मामूली खिदमतगार हूँ। मुझसे आप यह क्या कहते हैं!

औरंग०—तुम खिदमतगार नहीं हो। इस दुनियामे तुम्हीं एक मेरे सच्चे दोस्त हो। क्या इनाम चाहते हो दिलेरखाँ?

दिलेर०—मैं जहाँपनाहकी जान बचा सका, यही मेरे लिए सबसे बढकर इनाम है।—मैं और कुछ नहीं चाहता।

औरंग०—दिलेरखाँ! तुम बडे ऊँचे खयालके आदमी हो।

नवाँ दृश्य।

स्थान–राजपूतोंका पडाव।

समय–सन्ध्याकाल।

[दुर्गादास, समरदास और राजपूत सरदार बैठे हैं।]

दुर्गादास—विजयसिंह! अबकी सचमुच हमने धोखा खाया।

समरदास—तुमने इतने दिनोंतक मुगलोंको पहचाना नहीं दुर्गादास!

विजयसिंह—मुझे खयाल न था कि अकबर ऐसा दगाबाज निकलेगा!

मुकुन्दसिंह—देखनेमें बहुत ही सीधा जान पडता था।

गोपीनाथ—वह है तो बिलकुल ही निकम्मा। चौबीस घंटे गाने-बजानेमें मगन रहता है।—मगर ऐसा आदमी तो कपटी नहीं होता।

समर०—गोपीनाथ ! मुगलके बच्चेके लिए सब संभव है ।—मै पानीका विश्वास कर सकता हूँ, गढेका विश्वास कर सकता हूँ; सर्पका विश्वास कर सकता हूँ, मगर मुगलके बच्चेका विश्वास नही कर सकता ! कपट उसकी जातिका धर्म है ! वह क्या करे !

गोपी०—सेनापति ! राना राजसिहकी मृत्यु कैसे हुई ?

दुर्गा०—सो तो ठीक मालूम नहीं हुआ, कुमार भीमसिंहकी मृत्युका सवाद सुनकर वे मूर्छित हुए थे, फिर होश नहीं आया ।

[दरबानका प्रवेश ।]

दरबान—(प्रणाम करके) स्वामी ! शाहजादा अकबर परिवार सहित द्वार पर खडे है ।

विजय०—अकबर !

दुर्गा०—परिवार-सहित ?

समर०—सावधान ! इसमे भी कुछ चाल है । भीतर न आने देना ।

दुर्गा०—नहीं, उनकी सुन तो लो । दोस्तके साथ एक आध दफा मुलाकात न भी की जाय तो कुछ हर्ज नहीं भैया ! मगर शत्रुको यों न लौटाना चाहिए । (दरबानसे) उनको आदरके साथ भीतर ले आओ । (दरबानका प्रस्थान ।)

मुकुन्द—इसके माने ?

समर०—फिर कुछ धोखा देने आया होगा—सावधान दुर्गादास !

गोपी०—इस युद्धमें क्या विस्मयका अन्त न होगा !

दुर्गा०—शाहजादेका सब लोग यथोचित सम्मान करना ।

[सपरिवार अकबरका प्रवेश ।]

(सब लोग उठ खडे होते हैं ।)

दुर्गा०—आज हमें यह इज्जत देनेका क्या कारण है शाहजादा साहब ?

अकबर—राठौर सरदार ! मुझे धोखा दिया गया।

समर०—आपको धोखा दिया गया ? या हमने धोखा खाया ?

अकबर—शायद दोनोंने धोखा खाया। राजपूतोंने मेरा मददगार होना मंजूर करके, मुझे बादशाह बनाकर, जब मैं बेखटके होकर बादशाहका बागी बन बैठा, तब मेरा साथ छोड़ दिया।

समर०—झूठ बात है।

रजिया—सिपाही !—अब्बाकी बेइज्जती न करना ! (आँखोंमें आँसू भरे हुए दीनदृष्टिसे दुर्गादासकी ओर देखती है।)

दुर्गा०—जरा चुप रहो भैया !—शाहजादा साहब ! राजपूतोंने बिना किसी कारणके आपका साथ नहीं छोड़ा। राजपूत लोग विश्वास-घातक नहीं होते। बादशाहकी यह चिट्ठी पढ़कर इन लोगोंने समझा कि राजपूतोंसे मिलकर आप धोखा देना चाहते हैं।—पढ़िए यह चिट्ठी। (चिट्ठी देना।)

अकबर—(पत्र पढ़कर) दुर्गादास ! सब झूठ है।

समर०—क्या झूठ है ?—ये बादशाहके दस्तखत नहीं है ?

अकबर—दस्तखत तो बादशाहके ही है। लेकिन इस खतमें जो कुछ लिखा है वह सरासर झूठ है। हम लोगोमें फूट डालनेके इरादेसे यह खत लिखा गया है। यह खत मेरे नाम लिखकर राजपूतोंके पास भेजा गया है। नहीं तो यह खत मेरे पास न पहुँचकर राजपूतोंके सिपहसालारको क्यों मिला ? मुगलसिपाही क्या राजपूत और मुगलको पहचानता न होगा ? अगर ऐसा ही होता, इस खतकी बात सच होती, तो ऐसी कामकी खबर इस तरह तुम लोगोंको न मिल जाती।

दुर्गा०—(सबकी तरफ देखकर) क्या कहते हो ?

समर०—हम यह कुछ सुनना नहीं चाहते। हम लोगोंको मुगलोंने बराबर धोखा दिया है। हम उन मुगलोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहते।

अकबर—राठौर सरदार! मुझे किसी तरफका न रखकर आफतमे न डालना। मै तुमसे पनाह चाहता हूँ।

दुर्गा०—सब सामन्तोकी क्या सलाह है?

विजय०—मैं तो कहता हूँ कि मुगलोंसे कुछ भी सम्बन्ध न रखना ही अच्छा है।

मुकुन्द०—मेरी भी यही राय है! मुगलोंसे हम एक ही जगह युद्धके मैदानमें—मिलना चाहते हैं।

जगत्०—मैं भी कहता हूँ। हम मुगलोसे मित्रता नहीं चाहते। हम युद्ध करना जानते हैं—युद्ध ही करेंगे।

दुर्जन०—सेनापति! मेरी भी यही सलाह है। शाहजादा मुगलोंके पडावको लौट जायँ—अपने पितासे जाकर क्षमाकी प्रार्थना करे। बादशाह अवश्य अपने लड़केको क्षमा कर देंगे।

अकबर—तो शायद आप लोग उनको नहीं पहचानते।

समर०—खूब पहचानते है। और अधिक पहचाननेकी जरूरत नहीं है।—लौट जाइए शाहजादा साहब!

अकबर—(दुर्गादाससे) राठौर—सरदार! मैं तुमसे पनाह माँगता हूँ।

दुर्गा०—सामन्तगण! क्षत्रियका धर्म है आश्रय देना।

समर०—साँपको दूध पिलाना क्षत्रियका धर्म नहीं हो सकता।

अकबर—मुझ पर भरोसा कीजिए—मेरे साथ चालाकी चली गई है।

दुर्जन०—सभव है। तो भी तुम्हारे बीचमे न पड़ना ही हम अच्छा समझते है।

अकबर—यही क्या सब सभाकी राय है। राजपूत आज अपना फर्ज भूलकर पनाह देनेसे मुँह मोड़ते है?

(सब चुपचाप हो रहते है।)

दुर्गा०—शरणागतकी रक्षाके लिए कोई राजी नहीं है?

सब—हम लोग शत्रुको आश्रय न देगे।

अकबर—सरदार! मैं बादशाहका लड़का हूँ—मुझे धोखा दिया गया है, मै मुसीबतमे पड़ा हूँ। मैं अपने लड़की-लड़कोंके साथ घुटने टेककर तुमसे पनाह माँगता हूँ। (पुत्र और कन्यासे) घुटने टेको शाहजादे! घुटने टेको शाहजादी!

रजिया—(घुटने टेककर, आँखोंमें आँसू भरकर) दुर्गादास! अब्बाको बचाओ।

दुर्गा०—किसीकी राय नहीं है?

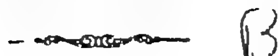
सब—हममेंसे किसीकी राय नहीं है।

दुर्गा०—अच्छी बात है! तो अकेले मै राजी हूँ।—सामन्तगण! दुर्गादास अपनेको क्षत्रिय समझता और बतलाता है। आश्रय माँगनेवाले शरणागतको वह कभी विमुख नहीं कर सकता। सामन्तगण! तुम्हारा जी चाहे मुझे छोड दो। मै आश्रितको नहीं छोड सकता।—चलिए, आइए शाहजादा साहब! जबतक दुर्गादासके प्राण हैं तबतक किसीकी मजाल नहीं कि आपका बाल बाँका कर सके।

(पर्दा गिरता है।)



चौथा अंक।



पहला दृश्य।

स्थान—दिल्ली। दरबारका कमरा।

समय—प्रातःकाल।

[शाहजादा मौअजम और दिलेरखाँ दोनों खडे हैं।]

दिलेर०—तो दुर्गादास अकबरको लेकर दक्खिनको चले गये?

मौअजम—हाँ दिलेरखाँ! अकबरको पनाह देनेके सबब सब राज-त-सरदारोंने उसे छोड़ दिया है। अब दक्खिनमें संभाजीके पास निके सिवा उसके लिए कोई चारा न था।

दिलेर०—शावास दुर्गादास!

मौअजम—सिर्फ पाँच सौ राजपूत, जो उसके खास जाँ-निसार साथी , उसके साथ गये हैं। मैंने फौज लेकर उसे घेर लिया था। क दिन रातको दुर्गादास अपने पाँच सौ साथियोंको साथ लिये गलोंकी फौजके वीचसे चीरफाड़कर निकल गया।—पीछेसे सुना के वह दक्खिनको गया है।

दिलेर०—शावास, दुर्गादास शावास!

मौअजम—बादशाहके हुक्मसे शाहजादे अकबरको पकड़ा देनेके लिए ने रिश्वतके तौर पर ४०००० मोहरें दुर्गादासके पास भेजी थीं। र्गादासने वे मोहरें अकबरको दे दीं। खुद एक कौड़ी भी नहीं ली।

दिलेर०—वाहवाह! शावास दुर्गादास!

मौजम—अब मारवाड़की फौजका सिपहसालार कौन है ?

दिलेर०—दुर्गादासके भाई समरदास।

मौजम—अकबरके लड़की-लड़के कहाँ है ?

दिलेर०—उन्हींके पास है। अकबरकी बेगम मर गई। शाहजादी रजिया समरदासके पास है।

[आजिमका प्रवेश।]

आजिम—दिलेरखाँ! बादशाह सलामत चाहते हैं कि राजपूतोंसे सुलह कर ली जाय। यही बात तुमसे कहनेके लिए बादशाहने मुझे भेजा है।

दिलेर०—क्या! सुलह! सच शाहजादा साहब ?—बादशाह क्या सचमुच सुलह चाहते हैं ?

आजिम—हाँ दिलेरखाँ!

दिलेर०—खुदा उनका भला करे।—सुलहका पैगाम कौन करेगा ? मैं या खुद बादशाह सलामत ?

आजिम—राजपूत करेंगे।

दिलेर०—राजपूत करेंगे! वे ही जीते, और वे ही सुलहका पैगाम भेजेंगे!

आजिम—जहाँपनाह कहते है कि हम सुलहका पैगाम नहीं भेज सकते। वैसा करनेमे हमारी बेइज्जती होगी।

दिलेर०—इसीसे उनकी इज्जत बचानेके लिए जीते हुए राजपूत सुलहका पैगाम लेकर आवेंगे!—यह बात किसने बादशाहसे कही है ?

आजिम—बीकानेरके राजा श्यामसिंहने। उन्होंने कहा है कि बादशाहकी इज्जतका खयाल रखकर वे सुलह करा देंगे।

दिलेर०—समझा। तो यह भी बादशाहकी पहलेकी ऐसी दगाबाजीकी सुलह है।

आजिम—दिलेरखाँ! जबान सँभालकर बात करो।

दिलेर०—(स्वगत) हूँ! साँपसे बढकर उसका बच्चा जहरीला होता है। (प्रकट)—जाइए शाहजादा साहब! बादशाहसे जाकर कहिए कि अगर बादशाह सचमुच राजपूतोंसे ईमानदारीकी सुलह करना चाहते हैं तो मैं सुलहमें ऐसी शर्त्तसे सुलह करा दूँगा कि बादशाहकी बिल्कुल बेइज्जती न होने पावेगी।—और अगर इस सुलहमें कोई चाल है तो उनसे कहना कि मैं शरीक नहीं हूँ। (प्रस्थान।)

मौजम—अब्बाजान एकाएक सुलह क्यों करना चाहते हैं आजिम?

आजिम—वे इस वक्त दक्खिन जाना चाहते है। इसके लिए पचास हजार तंबू बनवाये गये हैं।

मौजम—क्या अकबरको पकड़नेके लिए वे दक्खिन जाना चाहते हैं?

आजिम—यही जान पडता है।—मौजम! तुम अकबरको पकड़कर नहीं ला सके—इससे बादशाह सलामत तुम पर बहुत नाराज है। यहाँ तक कि उन्हें शक है कि तुमने जान बूझकर अकबरको निकल जाने दिया है!

मौजम—यह बात बिल्कुल झूठ नहीं है। आजिम! बादशाहके गुस्सेकी आगमें अपने भोलेभाले कमजोर भाईको डाल देना मैंने मुनासिब नहीं समझा। वह दुर्गादासके पास मजेमें है।

आजिम—तो तुमने मौजम, जानबूझकर बादशाहकी मर्जीके खिलाफ यह काम किया है?

मौजम—हाँ आजिम! बाप बाप है, लेकिन भाई भी भाई है।

(प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—जोधपुरका महल।

समय—प्रात काल।

[रेशमी कपडे पहने रानी महामाया अकेली खडी हैं।]

रानी—मेरा काम समाप्त हो गया। मेरे परलोकवासी स्वामीका राज्य शत्रुके हाथसे निकल आया। मारवाडसे मुगल निकल गये। बस, अब काम पूरा हो गया। अब मैं सती-धर्मका पालन करूँगी। आज स्वामीके पास यात्रा करूँगी। आज जलती हुई चितामें इस शरीरको छोडूंगी। आज जलकर सब कष्टोंसे छुटकारा पाऊँगी। (घुटने टेककर) प्रभो! स्वामिन्! प्राणवल्लभ! एक दिन जब तुम युद्धमें हारकर आये थे तब मैंने स्वाभिमानके मारे गढका फाटक बन्द कराकर युद्ध-भूमिमें तुम्हारी मृत्युकी कामना की थी। देखो नाथ! हम जैसे देशके लिए तुमसे मरनेको कहती हैं वैसे ही हम भी तुम्हारे लिए हँसते हँसते मर सकती हैं।

["बन ठन कहाँ चली-बन ठन" इत्यादि गाते हुए रजियाका प्रवेश।]

रजिया—रानी! आप यह क्या कर रही हैं?

रानी—मैं जाती हूँ रजिया।

रजिया—यह क्या! कहाँ?

रानी—(ऊपर उँगलीका इशारा करके) वहाँ—जहाँ मेरे स्वामी इतने दिनोंसे मेरी राह देख रहे हैं।

रजिया—आपके शौहर राह देख रहे हैं!—वहाँ? कहाँ? मुझे तो नहीं देख पडते।—

रानी—और कोई नहीं देख सकता शाहजादी!

रजिया—आप क्या देख पाती है?

रानी—देख क्यों नहीं पाती रजिया!

रजिया—मुझे यकीन नहीं आता। मुझे नहीं देख पड़ते, और आप देखती हैं?—यह हो ही नहीं सकता।—

रानी—भोलीभाली लड़की! औरंगजेबके वंशमें तेरा जन्म हुआ है!

रजिया—अच्छा कुअँरको आप किसके पास छोड़े जाती हैं?

रानी—तुम लोगोंके पास।

रजिया—भई मुझसे उनकी देखरेख न होगी। आप तो अपने लड़केको छोड़ जायँगी—और मैं उसे देखूँगी! कभी न देखूँगी।

रानी—मुझे तो जाना ही होगा रजिया—मेरे स्वामी बुला रहे हैं।

रजिया—आप अपने शौहरको लड़केसे बड़ा समझती हैं?

रानी—हिन्दुओंकी औरतोंका यही धर्म है—शाहजादी! स्वामी ही सती स्त्रीका सर्वस्व है—पति ही पतिव्रताके लिए सब कुछ है। अभीतक काम बाकी था, इसीसे उनको छोड़कर यहाँ थी। अब मेरा काम पूरा हो गया है। मैं उनके पास जाऊँगी।

रजिया—काम पूरा हो गया, इसके क्या माने! काम कहीं खतम होता है? नहीं, मैं तो देखती हूँ कि आप किसी तरह नही जा सकतीं।

रानी—नहीं बेटी, ऐसा न कहो।

[समरदासका प्रवेश।]

रजिया—यह क्या बात है! यह भी कहीं हो सकता है?—यह तो हो ही नहीं सकता।—ये देखो सरदार आ गये! (समरदाससे)

आप ही कहिए, यह कहीं हो सकता है?—क्यो सरदारसाहब!

रानी-—क्यों नहीं हो सकता रजिया?

रजिया—क्यों नहीं हो सकता, सो तो मैं नहीं जानती। लेकिन यह अच्छी तरह समझती हूँ कि यह हो नहीं सकता।—सरदार-साहब! आप ही कहिए, यह हो सकता है?

रानी—अवश्य हो सकता है बेटी! मुझे सती होने दो—मैं जाऊँगी। अजित कहाँ है समरदास?

समर०—भीतर है। रो रहा है!—मै कुअँरको समझा नहीं सका रानीजी! और क्या कहकर समझाता!

रानी—वह क्या कहता है?

समर०—कुअँर कहते हैं,—'मै माको जाने न दूँगा।'

रानी—उसे यहाँ ले आओ समरदास!

(समरदासका प्रस्थान।)

रानी—भगवन्!—सतीधर्म-पालन करनेके लिए मेरे हृदयमें बल दो। सबसे कठिन काम यही है—लड़केको छोड जाना (हृदयपर हाथ रखकर) भगवन्!—

[अजितको लेकर समरसिंहका प्रवेश। साथ साथ कासिम भी आता है।]

रानी—कुअँर! बेटा अजित!—मेरे बच्चे!—मैं जाती हूँ।—मुझे जाने दो लाल!—

अजित०—मा! तुम जाती हो—मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाती हो मा?

रानी—जहाँ सब लोग एक दिन जाते हैं।—कोई दो दिन आगे जाता है और कोई दो दिन पीछे।—अजित! मुझे जाने दो बेटा!

अजित०—जाने दूँ! जाने दूँ (कम्पित स्वरसे) मा!—

रानी—किसीकी मा सदा नहीं रहती अजित!

अजित०—किसीकी मा अपनी इच्छासे इस तरह सन्तानको छोड़कर नहीं जाती मा!

रानी—मगर यह तो सती-स्त्रीका धर्म है अजित!

रजिया—लेकिन माका क्या यही धरम है रानी?

रानी—छिः अजित। रोते क्यों हो!—मुझे जाना ही होगा।

अजित०—अगर जाना ही होगा तो जाओ। जाना चाहती हो, मुझे छोड़ कर जा सको—जाओ! मैं न रोकूँगा।

रानी—प्रसन्न होकर मुझसे जानेके लिए कहो बेटा!

अजित०—मैं जानेके लिए नहीं कहूँगा।

रानी—समरदास! कुअँरको समझाओ।

समर०—अजित! तुम्हारी माका यही सती-धर्म है। इस धर्मके पालनमें बाधा डालना तुम्हें उचित नहीं।

रजिया—धरम! सरदार!—लड़की-लड़के छोड़कर, उन्हें दूसरोंको सौंपकर, मर जाना धरम है!—इसे तुम धरम कहते हो!—

समर०—शाहजादी! धर्मका विचार करना हमारा काम नहीं है। जो सनातन धर्म है, उसका पालन करना ही हमारा काम है। उसके आगे हमारा सिर झुकाना ही सोहता है। जो लोग इसे धर्म ठहरा गये हैं वे हमसे सब बातोंमें बहुत बड़े थे।

अजित०—तो तुम मा हमको छोड़ जाओगी—(कम्पित स्वरसे) यह तुम्हें अच्छा लगता है? यही ठीक जान पड़ता है?—कष्ट नहीं मालूम होता?

समर०—कष्ट नहीं मालूम होता! (कम्पित स्वरसे) अजित! यह क्या तुम्हारी ही मा हैं, मेरी नहीं हैं? सारे मारवाड़की मा नहीं हैं?—

तो भी इन्हे जाने देना होगा अजित! (फिर कुछ प्रकृतिस्थ होकर) यह भी देव-प्रतिमाको विसर्जन करना है! लडकीको सुसरालके लिए विदा करना है!—कष्ट होनेके कारण नियमको कोई नहीं लाँघ सकता।

अजित०—मै यह कुछ नहीं समझता। मैं अपनी माको न छोड़ूंगा। (रोता है।)

(निरुपाय होकर रानी फिर समरदासकी तरफ देखती है।)

समर०—अजित! तुम क्षत्रियके बच्चे हो—तुम्हारा यों रोना—यों वेजा हठ करना—नहीं अच्छा माळूम होता!—तुम्हारी ही अवस्थामे वीरवर बादलने चित्तौरके लिए, कर्त्तव्यके लिए प्राणपणसे युद्ध किया था! और तुम बच्चोंकी तरह, औरतोंकी तरह, रोने बैठे हो! छि. !—माको प्रणाम करो अजित।—

[अजित चुपचाप प्रणाम करता है।]

रजिया—हाय! बेचारे कुअँर!

समर०—(कुअँरसे) अब जाओ।

रानी—कासिम! इस अपने सर्वस्व पुत्रको तुम्हे सौंपे जाती हूँ।

(कासिमके साथ अजितका चुपचाप प्रस्थान।)

रजिया—उहूँ। यह ठीक नहीं होता। किस जगह भूल है, सो मेरी समझमें नहीं आता, लेकिन यह साफ जान पडता है कि यह ठीक नहीं हो रहा है। जाऊँ, बेचारे कुअँरको समझाऊ। (प्रस्थान।)

रानी—भगवन्, भगवन्! इसीके लिए क्या तुमने स्त्री-जातिको पैदा किया था? स्त्रीके हृदयमे स्नेह भर दिया था—उसे पीडा पहुँचानेके लिए? स्त्रीके हृदयमें ममता दी थी—उसे जलानेके लिए? (सिर झुकाकर) अच्छा विदा होती हूँ समरदास—क्यों, चुप क्यों हो?

समर०—जाओ माता ! हिन्दू होकर किस तरह कहूँ कि तुम सती न होओ। जाओ माता ! प्रणाम ।—

रानी—दुर्गादाससे मेरा आशीर्वाद कहना ।

(समरदास सिर झुकाकर धीरे धीरे दूसरी ओरसे जाते हैं ।)

(पर्दा बदलता है ।)

[चिता जल रही है । रानी और स्त्रियाँ खडी है । स्त्रियोंका गान ।]

गीत ।

सती, पतिके निकट जाओ, पतिव्रत-पुण्य-फल पाओ ।
विना पतिके सतीकी और गति है कौन ?—बतलाओ ॥
जगतके शोक-दुख जल राख होवें साथ ही तनके ।
जननि, तुम लोक अक्षय स्वर्गका पाओ, वहाँ जाओ ॥
उधर देखो, गगनमें देवता हैं फूल वरसाते ।
सुनो, जयभेरियाँ ये बज रही हैं, देवि तुम आओ ॥

(रानी चितामें कूद पडती हैं । स्त्रियाँ गाती हुई जाती हैं ।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान—अजमेर । शाही महलकी वैठक ।

समय—प्रात काल ।

[औरंगजेब और दिलेरखाँ ।]

दिलेर०—जहाँपनाह ! राजपूतोंसे सुल्ह हो गई। राठौर समरदास त सुलहके लिए किसी तरह राजी नहीं होते थे। उन्होंने कहा—इस लहमें चाल है ।

औरंग०—फिर किस तरह उसे राजी किया दिलेरखाँ ?

दिलेर०—मैंने उनके यकीनके लिए अपने दोनो लड़कोंको वहीं ोड़ आनेके लिए कहा तव वे राजी हुए ।

औरंग०—किस शर्त पर सुलह हुई ?

दिलेर०—इस शर्त पर कि चित्तौर और उसमें लगनेवाले और शहर वगैरह राजपूतोंको फेर दिये जायँगे, हिन्दुओंके मन्दिर वगैरह पर आइन्दा कुछ जुल्म न होगा। जोधपुरके राजाको उनका राज्य फेर देना होगा। और राना भी पहलेकी तरह अपनी फौजसे हमेशा बादशाहकी मदद करेंगे।

औरंग०—राना अपनी फौजसे हमारी मदद करेंगे? राना जयसिंहने यह मंजूर कर लिया है?

दिलेर०—पूरी तौरसे मंजूर कर लिया है! इस सुलहको सबसे ज्यादा उन्होंने ही पसंद किया है! समरदास पहले उन्हें 'कायर! आरामतलब!' वगैरह कह कर सभासे उठकर चले गये। राना सिर झुकाकर चुप रह गये।

औरंग०—फिर?

दिलेर०—फिर एक दफा सब राजपूत जमा हुए। फिरसे नया सुलहनामा लिखा गया। समरदास बोल उठे कि 'मुगलोंका एतबार क्या?' तब मैं अपने दोनों लडकोंको वहाँ छोड़ आनेके लिए तैयार हो गया। इस पर भी बडी मुश्किलसे समरदास राजी हुए।

औरंग०—तुम अपने दोनो लडके वहाँ छोड आये हो?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह!

औरंग०—दिलेरखाँ! तुम बहुत बडे आदमी हो।—मैं इस सुलहकी शर्तें निबाहूँगा।

दिलेर०—हुजूरका एकबाल बलन्द हो।—

[श्यामसिंहका प्रवेश।]

श्याम०—राजाधिराज बादशाह औरंगजेबकी जय हो!

औरंग०—क्या खबर है राजासाहब !

श्याम०—सब काम बन गया खुदावन्द !—इस तरह काम बनजानेकी आशा न थी ।—अब बादशाहका काँटा जाता रहा ।

औरंग०—कैसे ?

श्याम०—सुलहके बाद कुछ ब्राह्मणोंके द्वारा विगड़े दिल समरदासको मैंने मरवा डाला ।

दिलेर०—क्या—उनको मरवा डाला राजासाहब ! सच ?—

श्याम०—हाँ सच !

दिलेर०—तुमने उनको मरवा डाला ?

श्याम०—हाँ दिलेरखाँ !

दिलेर०—हुजूर माफ करें (श्यामसिंहकी गर्दन पकड़कर) पाजी ! बुजदिल ! तू राजपूत है ? आज मैं तुझे जीता न छोड़ूँगा।

श्याम०—(कातर भावसे औरंगजेबकी तरफ देखकर) जहाँपनाह !

औरंग०—छोड़ दो दिलेरखाँ—यह बहुत ही मामूली आदमी है। मच्छड़ मार कर हाथ न काले करो दिलेरखाँ !

दिलेर०—सच है । तुझे मारकर ये हाथ काले न करूँगा ।—तू दोजखके कीड़ोंसे भी गयागुजरा है ! तुझे देखनेसे भी गुनाह होता है !—तुझे हाथसे छूना भी बड़ा भारी गुनाह है !—दूर हो ।—

(श्यामसिंहको धक्का देकर दूर कर देना ।)

दिलेर०—हाथ धो आऊँ हुजूर । (प्रस्थान ।)

औरंग०—दिलेरखाँ ! मेरे लिए तुमको दोनों लडकोंसे हाथ धोना पड़ा ! लेकिन मेरा इरादा अच्छा था । इसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ दोस्त । यह खून मेरी रायसे नहीं हुआ है । इतनी ओछी तबीयतका आदमी मैं नहीं हूँ ।

[मौजमका प्रवेश ।]

मौजम—हुजूरने बुलाया है?

औरंग०—हाँ मौजम!—दक्खिन जानेके लिए सारी मुगलोंकी फौजको हुक्म दो। तुम भी तैयार रहो।

मौजम—जो हुक्म। (दोनोंका प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान—दक्खिन पालीगढका किला।

समय—रात्रि।

[मराठोंके राजा संभाजी, दुर्गादास और अकबर बैठे हैं।]

संभाजी—दुर्गादास, तुमने बड़ा साहसका काम किया! सिर्फ ५०० घुड़सवार लेकर जोधपुरसे पालीगढ चले आये!

अकबर—हमको आये बहुत दिन हुए। इतने दिनोतक महाराजके दर्शन ही नहीं मिले।

संभाजी—शाहजादा साहब! मै राज्यके एक खास काममे लगा हुआ था। इसीसे देर हो गई। माफ कीजिएगा शाहजादा साहब! आपकी मेहमानदारीमें—आदर-सत्कारमें—तो कुछ कसर नहीं हुई?

अकबर—नहीं! महाराजके सरदारोंने बड़ी इज्जतसे मुझको रक्खा है। मेहमानदारीमें कुछ कसर नहीं हुई।

संभाजी—शाहजादा साहब, आपकी बेगम और बच्चे कहाँ हैं?

दुर्गा०—मारवाड़की रानीके पास उन्हें छोड़ आना पड़ा है। उन पर बादशाहकी नाराजगी नहीं है। केवल शाहजादाको आप आश्रय दें।

सभाजी—आप अपने लिए कुछ चिन्ता न करें शाहजादा साहब ! आप अपनेको इस समय लोहेके किलेमें समझिए !—दुर्गादास ! तुमने इनको बादशाह बनाया था ?

दुर्गा०—हाँ बनाया था महाराज।

सभाजी—बस ! अकबर शाह ! हम मराठे भी आजसे आपको बादशाह मानते हैं ।

अकबर—मेरा भाई मौजम बहुतसी फौज लेकर मुझे पकड़नेके लिए आ रहा है ।

दुर्गा०—शाहजादा आजिम भी सेना लेकर अहमदनगरमें आये हैं ।

सभाजी—कुछ डर नहीं है शाहजादा साहब ! मैं खुद बहरमपुरमें जाकर आपको बादशाह बनाऊँगा ।

[सभाजीके दो सेनापति सन्तूजी और केशवका प्रवेश ।]

सन्तूजी—जिंजिरागढ जीत लिया गया महाराज !

सभाजी—अच्छी बात है ! मैं बहुत खुश हुआ !

केशव—महाराज, कर्नल केरी और फर्डीनेंड मुलाकात करना चाहते हैं । क्या उन्हें यहाँ ले आऊँ ?

सभाजी—ले आओ—हर्ज क्या है !

(सन्तूजी और केशवका प्रस्थान ।)

सभाजी—दमभरकी फुरसत नहीं है शाहजादा साहब—राजाके पीछे राजकाज लगा ही रहता है ! महीने भरसे अधिक हुआ, अँगरेजोंने यह जिंजिराका किला तैयार किया था । वह मिट्टीमें मिला दिया गया, देखा !—दुर्गादास ! राजपूत लोग युद्ध करना जानते हैं ?

दुर्गा—राजपूत लोग देशके लिए प्राण देना जानते हैं ।

[मौजमका प्रवेश।]

मौजम—हुजूरने बुलाया है?

औरंग०—हॉं मौजम!—दक्खिन जानेके लिए सारी मुगलोंक फौजको हुक्म दो। तुम भी तैयार रहो।

मौजम—जो हुक्म। (दोनोंका प्रस्थान।

चौथा दृश्य।

स्थान—दक्खिन पालीगढका किला।

समय—रात्रि।

[मराठोंके राजा सभाजी, दुर्गादास और अकवर वैठे है।]

संभाजी—दुर्गादास, तुमने वड़ा साहसका काम किया! ५०० घुड़सवार लेकर जोधपुरसे पालीगढ़ चले आये!

अकवर—हमको आये वहुत दिन हुए। इतने दिनोंतक महार दर्शन ही नहीं मिले।

संभाजी—शाहजादा साहव! मै राज्यके एक खास काममें हुआ था। इसीसे देर हो गई। माफ कीजिएगा शाहजादा सा आपकी मेहमानदारीमें—आदर-सत्कारमें—तो कुछ कसर नहीं

अकवर—नही! महाराजके सरदारोंने वड़ी इज्जतसे मुझको र है। मेहमानदारीमें कुछ कसर नहीं हुई।

सभाजी—शाहजादा साहव, आपकी वेगम और वच्चे कहॉं है

दुर्गा०—मारवाड़की रानीके पास उन्हें छोड़ आना पड़ा है। पर वादशाहकी नाराजगी नहीं है। केवल शाहजादाको आप उ दें।

सभाजी—आप अपने लिए कुछ चिन्ता न करें शाहजादा साहब! आप अपनेको इस समय लोहेके किलेमें समझिए!—दुर्गादास! तुमने इनको बादशाह बनाया था?

दुर्गा०—हाँ बनाया था महाराज।

सभाजी—बस! अकबर शाह! हम मराठे भी आजसे आपको बादशाह मानते हैं।

अकबर—मेरा भाई मौजम बहुतसी फौज लेकर मुझे पकड़नेके लिए आ रहा है।

दुर्गा०—शाहजादा आजिम भी सेना लेकर अहमदनगरमें आये हैं।

संभाजी—कुछ डर नहीं है शाहजादा साहब! मै खुद बहरमपुरमें जाकर आपको बादशाह बनाऊँगा।

[सभाजीके दो सेनापति सन्तूजी और केशवका प्रवेश ।]

सन्तूजी—जिंजिरागढ़ जीत लिया गया महाराज!

सभाजी—अच्छी बात है! मैं बहुत खुश हुआ!

केशव—महाराज, कर्नल केरी और फर्डीनेंड मुलाकात करना चाहते हैं। क्या उन्हें यहाँ ले आऊँ?

सभाजी—ले आओ—हर्ज क्या है!

(सतूजी और केशवका प्रस्थान ।)

सभाजी—दमभरकी फुरसत नहीं है शाहजादा साहब—राजाके पीछे राजकाज लगा ही रहता है! महीने भरसे अधिक हुआ, अँगरेजोंने यह जिंजिराका किला तैयार किया था। वह मिट्टीमें मिला दिया गया, देखा!—दुर्गादास! राजपूत लोग युद्ध करना जानते हैं?

दुर्गा०—राजपूत लोग देशके लिए प्राण देना जानते हैं।

संभाजी—मगर राजपूत जाति तो वार वार यवनोंके द्वारा पददलित हुई है।

दुर्गा०—सच है। मगर सोचिए तो महाराज! आर्यावर्त्तमें राजस्थान एक रजकणके बरावर है! तव भी आर्यावर्त्तभरमें केवल राजपूत ही तीन सौ वर्षसे सिर उठाये हुए है।

संभाजी—और मराठे लोग केवल मस्तक ऊँचा किये ही नहीं है—वे मस्तक बना रहे है—किसकी अधिक शक्ति है दुर्गादास!

दुर्गा०—मै यह नहीं कहता कि मराठोंमें बल नहीं है। मेरे कहनेका मतलव यह है कि राजपूत लोग भी शक्तिशाली हैं—उनकी भी कलाइयोंमें वल है।—महाराज, मेरे यहाँ आनेका प्रधान उद्देश्य है शाहजादा अकवरको सुरक्षित करना।

सभाजी—अच्छा आये हो तो देखे जाओ, मराठे किस तरह युद्ध करते हैं! देशमें जाकर लोगोंसे कहने योग्य एक वात माळूम हो जायगी।

दुर्गा०—(स्वगत) इतना घमंड है तो शीघ्र ही पतन होगा।

[केरी और फर्डीनेंडके साथ केशवका प्रवेश।]

संभाजी—केरी साहव! तुमने जिंजिरागढकी हालत देखी?

केरी—हाँ राजा साहव!

सभाजी—यही अवस्था तुम्हारे बंबईके उपनिवेशकी होगी, अगर मेरे दुश्मनोंके जहाजोंको वन्दरगाहमे ठहरने दोगे! और एलीफेण्टामें मराठोंका किला वनेगा।

केरी—राजा साहव—

संभाजी—मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। जाओ—और पुर्त्तगीज सरदार साहव! तुमने मेरा मना किया नहीं माना। तुम्हारे अकीद्वीपपर दखल करनेके लिए मैंने जहाज भेजे हैं। देखता हूँ तुम्हार

गोआका व्यापार कैसे चलता है! अब भी होशमे आजाओ—जाओ।

(कोर्निश करके केरी और फर्डीनिंडका प्रस्थान।)

सभाजी—इन फिरगियोको मैं कुछ डरता हूँ दुर्गादास!—काव-लेस खाँ!—

नेपथ्यमें—हुजूर?—

सभाजी—शराव और औरत—

नेपथ्यमे—जो हुक्म महाराज!

संभाजी—ये फिरगी खूब वन्दूकका निशाना लगाते है।—और कभी इनकी फौज सरदारके मरनेसे भाग खडी नहीं होती। सबकी एक ही चाल, एक ही निशाना एक ही ओर मुँह रहता है!

[शराबकी बोतल लिये कावलेसखाँका प्रवेश।]

सभाजी—(वोतलसे प्यालेमे शराब ढालकर) लो दुर्गादास!

दुर्गा०—मुझे तो माफ कीजिए महाराज!

संभाजी—यह क्या कहते हो! शराब पीनेसे इनकार!—'गर यार मय पिलाये तो फिर क्यों न पीजिए। जाहिद नहीं मै शेख नही कुछ वली नहीं।'—शाहजादा साहव—

अकबर—शराव पीना तो कुछ बुरा नहीं है!—

सभाजी—वेशक तुम वादशाही तबीयतके आदमी हो। मै तुमको जरूर वादशाह वनाऊँगा।

कावलेसखाँ—हुजूर औरत?

संभाजी—हाँ—अभी यहीं—

दुर्गा०—तो मैं अव जाता हूँ। जरा विश्राम करूँगा।

सभाजी—क्यों, तुम्हारा सतीत्व नष्ट होगा?—अच्छा जाओ!—

दुर्गादास—(उठते उठते, मनमें) इतनी ओछी तबीयतका आदमी है!

[नाचनेवालियोंका प्रवेश ।]

संभाजी—बस, गाओ–नाचो । शाहजादासाहब ! मुसलमान लोग क्या बड़े ऐयाश होते हैं ?

अकबर—(शराब पीते पीते) हॉ । लेकिन शराब पीना दीन-इसलाममें मना है ।

संभाजी—हॉ ! तो वह धर्म मेरे लिए नहीं हैं। . शराब भी कैसी अच्छी चीज है । पीते ही ऑखोंमे लाली, तबीयतमें बहाली, तमाम दुनिया रजसे खाली—हाः हाः हाः ! दुनियामे दो ही तो चीजे हैं—शराब और औरत—गाओ ।

दुर्गा०—(जाते जाते अपने मनमें) यही शराब और औरत तुम्हारा सर्वनाश करेगी सभाजी ! (प्रस्थान ।)

सभाजी—देखा अकबर, दुर्गादास कैसी नजरसे मेरी तरफ देखता चला गया ! ढोंग दिखाता है !

अकबर—अच्छा तुम लोग गाओ ।

संभाजी—हॉ गाओ—नाचो—किस जिन्दगीके लिए लड़ाई लड़ें शाहजादासाहब ! आरामसे जिन्दगीके मजे उडाओ—गाओ । एक शाहजादेके आनेकी खुशीका गीत गाओ । ये भारतसम्राट् औरंगजेबके लड़के अकबर हैं ।—

(नाचनेवालियॉ नाचती और गाती है ।)

गीत ।

मित्र दयाकर जो तुम आये हो मन-भाये कुटी हमारी ।
जान न पडे तुम्हे क्या देकर करूँ प्रसन्न, अहो गुणधारी ! ॥
काहेमे मै करूँ विभूपित तुमको रत्नोंके अधिकारी ! ।
केवल मित्रपनेके नाते अपनालो बस जान अनारी ॥

क्या इस दम मैं दौड तुम्हारे सदय हृदयहीसे लग जाऊँ ? ।
या इन चरणोंके ऊपर ही लोट लोटकर खुशी मनाऊँ ? ॥
हँसूँ मनाऊँ इन चरणोंपर अथवा आनन्दाश्रु गिराऊँ ? ।
समझ न पडता, मैं अब कैसे प्रीति हृदयकी आज दिखाऊँ ? ॥
आशातीत अतिथि ! जो तुमको आज कुटीमे अपनी पाया ।
राह-धूलमें अँधियारेमे, हाथ एक मणि अपने आया ॥
जो आये हो तो मैं अपना हृदयासन सानन्द बिछा दूँ ।
प्रेमहार प्रिय, गूँथ गलेमें सानुराग रुचिसे पहना दूँ ॥
पडा रहूँ दिनरात तुम्हारे चरणोंमे ही शरण तुम्हारी ।
तुम मेरे प्रियवन्धु, तुम्हारे ऊपर तन मन धन सब वारी ॥

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—राना जयसिंहका अन्त पुर ।

समय—सायकाल ।

[जयसिंह और उनकी धाय, दोनों आमने सामने खडे हैं ।]

जय०—क्या ! कमला मुझसे कहे विना चली गई !

धाय—गई तो गई ! हुआ क्या ? आफत टल गई ?

जय०—बड़ी रानी कहाँ हैं ?

धाय—वह घरकी लक्ष्मी घरमें है ।

जय०—उन्हें बुलाओ तो । जरूर उनसे कुछ झगड़ा हुआ है ।

धाय—नहीं भैया नहीं ! वह तो कुछ बोलती ही नहीं । मिट्टीकी पुतली है ! छोटी रानी ही वीच-वीचमें उसको वकती झकती है—धमकाती है— वापरे वाप ! जैसे ताड़का राक्षसी वन जाती है ! उस समय छोटी रानीका मुँह मानों आतिशबाजीका **अनार** वन जा

है और जब मान करती है तब भारी तौला! —भैया, मैंने तो ऐस
लुगाई नहीं देखी!

जय०—चुप! मुँह सँभाल कर बात कर!

धाय—अरे बापरे! तुम तो कुंभकर्ण बन गये! मुझे खाने आये हो
क्यों? डर काहेका है? तुम पर तो छोटी रानीने जादू कर दिया है
तुम तो राज-पाट सब छोड़कर उसीके नामकी माला जप रहे हो। मग
मैं तो इस घरका अन्न खाकर पली हूँ—बुड्ढी हुई हूँ—मुझ
अन्याय न देखा जायगा।

जय०—देख, मैंने तेरा दूध पिया है, इसीसे तेरी सब बातें सु
लेता हूँ। जा, बड़ी रानीको बुला दे।

धाय—मैं क्यों बुला दूँ! तुम आप क्यों नहीं उसके पास जाते! व
कुछ तुम्हारी मोल ली हुई दासी नहीं है। वह भी तो राजाकी लड़की है

जय०—तू नहीं जायगी?

धाय—ईः!—इनकी लाल लाल आँखे तो देखो—जैसे दुर्वासा मु
हो। क्या मारोगे? मारो तो अचरज ही क्या है! देशको मुस
मानोंके हाथमें सौंपकर घरमें औरतोंको डाँटते-डपटते हो—क्रो
दिखाते हो—शर्म भी नहीं आती!

जय०—सभी निन्दा करते हैं मानता हूँ, किन्तु दाई मा तू भी—
मेरे प्राणोंमें क्या हो रहा है, सो क्या तू जानती है?

धाय—जानती क्यों नहीं हूँ। उसने जादू कर दिया है जादू!—ग
बनकर गर्दन पर सवार हो गई है! अच्छा जाती हूँ। बड़ी रानीको बुल
देती हूँ। मगर यह कहे रखती हूँ, उसको कुछ कहना-सुनना नहीं
सतीलक्ष्मीका अपमान मुझसे देखा न जायगा। (प्रस्थान।

जय०—जादू ही कर दिया है! मुझे तन्मय बना लिया है! और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। कमला इस नगरको छोड़कर चली गई है—संसार सूना देख पड़ता है। आँखोके आगे अन्धकार छाया हुआ है!

[धीरे धीरे सरस्वतीका प्रवेश।]

सरस्वती—मुझे बुलाया है?

जय०—हाँ—छोटी रानी कहाँ है, जानती हो?

सर०—नहीं।

जय०—तुमसे कुछ नहीं कह गई?

सर०—नहीं।

जय०—तुमसे (सिर नीचा करके) कुछ झगड़ा तो नहीं हुआ?

सर०—नहीं।

जय०—(कुछ देरतक चुप रहकर) क्या तुम सच कह रही हो सरस्वती?—मुझे विश्वास नहीं होता।

सर०—विश्वास करना न करना तुम्हारे हाथ है। तुमने पूछा इससे कह दिया।

जय०—कमलाके यों चले जानेका कुछ कारण जानती हो?

सर०—नहीं, ठीक कारण नहीं जानती।

जय०—कुछ अनुमान किया है?

सर०—हाँ, किया है।

जय०—तुमने क्या अनुमान किया है?

सर०—कहूँगी नहीं। मुझसे कहा न जायगा।

जय०—कहा न जायगा? न कहोगी?

सर०—नहीं।

जय०—सरस्वती! यही तुम्हारी पति-भक्ति है!—अच्छा खैर, मेरी बात सुनो। कमलाके लिए देश-त्याग करना होगा तो वह भी मैं करूँगा।—यह शायद तुम जानती हो?

सर०—अच्छी तरह जानती हूँ। देशको तो मुसलमानोंके हाथ बेच आये हो। उसे त्याग करोगे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है!

जय०—देशको मैं बेच नहीं आया। मैंने सन्धि की है।

सर०—इसको सन्धि कहते हैं राना? मुसलमान पाँच सौ वर्षसे, देश जाति और धर्मको पीड़ा पहुँचा रहे हैं—अत्याचार कर रहे हैं। उन्हीं मुसलमानोंको राठौर-वीर दुर्गादास और तुम्हारे भाई भीमसिंहने हराया था। तुमने उन्हीं हारे हुए मुगलोंसे यों सन्धि कर ली!—तुमने 'राना' पदकी अप्रतिष्ठा की।

जय०—यह सन्धि मैंने किसके लिए की है?—अपने लिए या जातिके लिए?

सर०—छोटी रानीके लिए!—तुम्हें और कुछ पूछना है?

जय०—नहीं।

सर०—अच्छी बात है—तो मैं जाती हूँ।

जय०—जाओ—मैं भी जाता हूँ।

सर०—जैसा जी चाहे!—सुनो नाथ, एक बात कहे जाती हूँ—चाहे जहाँ जाओ, मगर शान्ति नहीं मिलेगी। जिस प्रचण्ड प्रवृत्तिके कारण आज तुम मुझे छोड़कर, पुत्र छोड़कर, राज्य छोड़कर चले जा रहे हो, वह प्रेम नहीं है—वह लालसा है। प्रेमकी गति नदीकी तरह स्थिर, स्वच्छ और धीमी होती है; झरनेकी तरह उच्छ्वाससे भरी, फेनैली और तेज नहीं होती। सच्चा प्रेम बिजलीके चमक ऐसा तीव्र

नहीं होता—वह चाँदनीकी तरह शान्त और मनोहर होता है।—मेरी इस बातको याद रखना—अक्षर अक्षर मिलाकर देख लेना।

(प्रस्थान।)

जय०—मैं जानता हूं सरस्वती! यह प्रेम नहीं है लालसा है यह लालसा धीरे धीरे मुझे राहुकी तरह ग्रसे लेती है—व्याधिके विषकी तरह सारे शरीरमें व्यापती जाती है। यह लालसा मुझे सर्व-नाशकी तरफ ढकेले लिये जाती है! सब समझता हूँ। किन्तु उपाय नहीं—कोई उपाय नहीं। (उद्भ्रान्त भावसे प्रस्थान।)

छट्ठा दृश्य।



स्थान—पुण्यमाली गढके भीतर दुर्गादासके सोनेका कमरा।

समय—रातके दस बजे।

[पलग पर बैठे दुर्गादास एक पत्र पढ रहे हैं।]

"इस प्रकार आपके सरल उदार भाई समरसिंहकी मृत्यु हुई। इधर हमारी महारानी चितारोहण कर स्वर्गीय स्वामीके पास पहुँच गई। उधर स्त्री-भक्त कायर राना जयसिंह मुगलोंसे एक अपमानजनक सन्धि करके, राज्य छोड़कर, दूसरी रानीको लेकर जयसमुद्रके किनारे रहनेके लिए चले गये हैं। उनके आचरणसे, महारानीके स्वर्गवाससे और वीर समरसिंहकी मृत्युसे राजस्थानके राजपूत सब तितर-बितर हो गये हैं।—राठौर सेनापति! आप देशको लौट आइए। हमारे अप-राधको क्षमा कीजिए। हम सबकी प्रार्थना मान लीजिए।"

दुर्गा०—हूँ! पत्रमें एक सौसे अधिक सामन्तोंके हस्ताक्षर हैं।

जय०—सरस्वती ! यही तुम्हारी पति-भक्ति है !—अच्छा खैर, मेरी बात सुनो। कमलाके लिए देश-त्याग करना होगा तो वह भी मैं करूँगा।—यह शायद तुम जानती हो ?

सर०—अच्छी तरह जानती हूँ। देशको तो मुसलमानोंके हाथ बेच आये हो। उसे त्याग करोगे तो उसमे आश्चर्य ही क्या है !

जय०—देशको मैं बेच नहीं आया। मैंने सन्धि की है।

सर०—इसको सन्धि कहते है राना ? मुसलमान पॉच सौ वर्षसे, देश जाति और धर्मको पीड़ा पहुँचा रहे हैं—अत्याचार कर रहे है। उन्हीं मुसलमानोंको राठौर-वीर दुर्गादास और तुम्हारे भाई भीमसिंहने हराया था। तुमने उन्हीं हारे हुए मुगलोंसे यों सन्धि कर ली ! —तुमने 'राना' पदकी अप्रतिष्ठा की।

जय०—यह सन्धि मैंने किसके लिए की है ?—अपने लिए या जातिके लिए ?

सर०—छोटी रानीके लिए !—तुम्हें और कुछ पूछना है ?

जय०—नहीं।

सर०—अच्छी बात है—तो मैं जाती हूँ।

जय०—जाओ—मैं भी जाता हूँ।

सर०—जैसा जी चाहे !—सुनो नाथ, एक बात कहे जाती हूँ—चाहे जहाँ जाओ, मगर शान्ति नहीं मिलेगी। जिस प्रचण्ड प्रवृत्तिके कारण आज तुम मुझे छोडकर, पुत्र छोड़कर, राज्य छोडकर चले जा रहे हो, वह प्रेम नहीं है—वह लालसा है। प्रेमकी गति नदीकी तरह स्थिर, स्वच्छ और धीमी होती है; झरनेकी तरह उच्छ्वाससे भरी, फेनैली और तेज नहीं होती। सच्चा प्रेम बिजलीके चमक ऐसा तीव्र

हीं होता—वह चाँदनीकी तरह शान्त और मनोहर होता है।—मेरी
त बातको याद रखना—अक्षर अक्षर मिलाकर देख लेना।

(प्रस्थान।)

जय०—मैं जानता हूं सरस्वती! यह प्रेम नहीं है लालसा है
ह लालसा धीरे धीरे मुझे राहुकी तरह ग्रसे लेती है—व्याधिके
ाषकी तरह सारे शरीरमें व्यापती जाती है। यह लालसा मुझे सर्व-
ाशकी तरफ ढकेले लिये जाती है! सब समझता हूँ। किन्तु उपाय
हीं—कोई उपाय नहीं। (उद्भ्रान्त भावसे प्रस्थान।)

छठा दृश्य।



स्थान—पुण्यमाली गढके भीतर दुर्गादासके सोनेका कमरा।

समय—रातके दस बजे।

[पलग पर बैठे दुर्गादास एक पत्र पढ रहे हैं।]

"इस प्रकार आपके सरल उदार भाई समरसिंहकी मृत्यु हुई।
धर हमारी महारानी चितारोहण कर स्वर्गीय स्वामीके पास पहुँच गईं।
उधर स्त्री-भक्त कायर राना जयसिंह मुगलोंसे एक अपमानजनक
सन्धि करके, राज्य छोड़कर, दूसरी रानीको लेकर जयसमुद्रके किनारे
रहनेके लिए चले गये हैं। उनके आचरणसे, महारानीके स्वर्गवाससे
और वीर समरसिंहकी मृत्युसे राजस्थानके राजपूत सब तितर-बितर हो
गये हैं।—राठौर सेनापति! आप देशको लौट आइए। हमारे अप-
राधको क्षमा कीजिए। हम सबकी प्रार्थना मान लीजिए।"

दुर्गा०—हूँ! पत्रमें एक सौसे अधिक सामन्तोंके हस्ताक्षर हैं।

[पत्रको लपेटकर तकियेके नीचे दबाकर दुर्गादास सिर झुकाये उसी कमरेमे टहलने लगते हैं। संभाजीका प्रवेश।]

संभाजी—(शराबके नशेसे भर्राई हुई आवाजमें) सुना दुर्गादास!

दुर्गा०—क्या महाराज!

सभाजी—औरंगजेबको सारे पहाडी मुल्कसे मार भगाया।—बेटा संभाजीसे युद्ध करने आया था! जानता नहीं!

दुर्गा०—मगर, बीजापुर और गोलकुंडा तो शत्रुओंके हाथमे चले गये!

सभाजी—इससे मेरी कोई हानि नहीं हुई। मै इधर बीजापुरके पश्चिम प्रान्तपर दखल किये बैठा हूँ। इधर आगे बढकर आवेंगे तो संभाजी है, पीछे लौटेंगे तो संभाजीकी सेना है। नाकमें दम कर दूँगा। औरगजेब बेटा नहीं जानता कि यह सभाजी है—और कोई नहीं।

दुर्गा०—किन्तु इस तरहके उद्देश्य-हीन युद्धसे फल क्या?—महाराज! मुझे अनुमति दीजिए, मै राजपूतोंकी सेना ले आऊं। मराठे और राजपूत मिलकर औरगजेबके विरुद्ध खड़े हो।

सभाजी—राजपूत! राजपूत युद्ध करना जानते है? उनकी सहायताका प्रयोजन नहीं है दुर्गादास! एक दिन मराठे ही राजपूतो और मुगलोंके दॉत खट्टे करेंगे।

दुर्गा०—महाराज! राजपूतोंके दॉत खट्टे करनेसे मराठोका गौरव नहीं बढेगा। राजपूत भी हिन्दू हैं, और मराठे भी हिन्दू है।

सभाजी—हॉ यह बात तो है।—दुर्गादास! तुम्हारा बिछौना तो खूब मुलायम है न?

दुर्गा०—राजपूतके लिए यह बिछौना खूब मुलायम है। हम लोगोंके लिए अक्सर घोड़ेकी पीठ ही बिछौनेका काम देती है!

सभाजी—यहीं पर तो हमारा तुम्हारा मत नहीं मिलता । युद्ध भी चाहिए, और उसके साथसाथ आराम भी चाहिए ।—दुर्गादास ! जीवनमें और सब कठिनाइयाँ झेली जा सकती है, मगर बिछौना नर्म ही होना चाहिए ।—काबलेसखाँ—

नेपथ्यमें—हुजूर !

सभाजी—सब तैयार है ?

नेपथ्यमें—हाँ हुजूर !

सभाजी—तो अब तुम आराम करो दुर्गादास । मैं जाता हूँ ।

(प्रस्थान ।)

दुर्गा०—(टहलते टहलते) मराठोंकी जाति लड़नेवाली है !—इनका घोडा चलाना, युद्ध-कौशल और सहनशीलता सब अद्भुत है ! —इसके साथ अगर राजपूत जातिकी एकाग्रता, स्वार्थत्याग और दृढताको भी मिला सकता, तो क्या न हो सकता था ! पर नहीं, वह न होगा । भारतका भाग्य अच्छा नहीं है । हिन्दू जाति बिखर गई है; उसका फिर एक होना बहुत कठिन है ।

(चुपचाप टहलने लगते हैं । सहसा दूरपर आर्त्तनाद सुन पड़ता है ।)

दुर्गा०—ओः ! कैसी तीव्र आर्त्त-ध्वनि है ! कैसी करुणध्वनि है ! —जैसे गूँज रही है ! यह तो पास, और भी पास, चली आती है ! —यह क्या ! यह तो मेरे दरवाजे पर ही पहुँच गई ! यह तो किसी स्त्रीकी चिल्लाहट है ! सुनकर हृदय जैसे फटा जाता है ।—

(एक स्त्री, जिसके बाल बिखरे हुए है और कपडे अस्तव्यस्त हो रहे हैं, दौड़कर दुर्गादासके कमरेमें प्रवेश करती है।)

स्त्री—बचाओ ! बचाओ !

दुर्गा०—कुछ डर नहीं है बहिन ! तुम डरो नहीं ! तुम कौन हो बहिन !

[नगी तरवार लिये सभाजी और उसके पीछे कावलेसखाँका प्रवेश।]

सभाजी—हरामजादी!—शैतानकी बच्ची! तूने उसे दर्वाजा खोल कर भगा दिया? तूने जान बूझकर ऐसा किया?

स्त्री—वह भले घरकी बहू-बेटी थी।

सभाजी—वह भले घरकी बहू-बेटी थी तो तेरा क्या?

(स्त्री भयके मारे कॉपती हुई मूर्छित होकर गिर पडती है, सभाजी तरवार लिये उसकी तरफ झपटते हैं। दुर्गादास सहसा उनके सामने आ जाते हैं।)

दुर्गा०—संभाजी!—महाराज! यह क्या! औरतको मारनेके लिए झपटते हो!—वीर होकर!

संभाजी—चुप रहो—हट जाओ—

दुर्गा०—कभी नहीं। दुर्गादासने आजतक कभी अपने आगे अबला पर अत्याचार होते नहीं देखा। तरवारको म्यानमें कीजिए महाराज!

संभाजी—जानते हो, यह कौन है?

दुर्गा०—यह चाहे जो हो, मेरी बहिन है।

सभाजी—हट जाओ दुर्गादास!

दुर्गा०—होशमें आइए महाराज! आपने शराब पी है। नहीं तो आपके द्वारा एक अबला पर अत्याचार होना सभव नहीं।

सभाजी—मैं फिर कहता हूँ कि हट जाओ।

दुर्गा०—कभी नहीं।

सभाजी—तो फिर तरवार हाथमें लो। मै निहत्थे शत्रुको मारना उचित नहीं समझता। तरवार लो।

दुर्गा०—इतना ज्ञान वना हुआ है! तो फिर स्त्री पर ऐसा अत्याचार करनेके लिए आप क्यों उतारू हैं?—सुनिए महाराज—

सभाजी—तरवार लो, (पैर पटककर) लो!—

दुर्गा०—तरवार लेनेकी जरूरत नहीं है।—

(सभाजीका गला पकडकर दुर्गादास पछाड देते हैं। तरवार छीनकर दूर फेंक देते हैं और फिर पगड़ी खोलकर सभाजीके दोनों हाथ बाँध देते हे। कावलेसखाँ मौका पाकर भाग जाता है।)

दुर्गा०—महाराज! आपका अतिथि हूँ। क्षमा कीजिएगा, इस बेअदबीको!

(दुर्गादास अपनी तरवार उठाकर उस स्त्रीके पास जाते हैं और उसे मुर्दा पाते हैं।)

दुर्गा०—यह क्या!—बालिका मर गई! डरके मारे ही मर गई।—महाराज! इस नन्हींसी जानके लिए तरवार लेकर दौड़े थे।—तुम महात्मा शिवाजीके पुत्र हो!—धिक्कार है!

(प्रस्थान।)

संभाजी—कौन है—पकड़ो—पकड़ो—

(बाहर हथियारोंकी झनकार सुन पड़ती है।)

सभाजी—छोडना मत—पकड़ लो—

[खूनसे तर दुर्गादास फिर प्रवेश करते हैं। साथमें कावलेसखाँ और सिपाही भी हैं। कावलेसखाँ सभाजीके हाथ खोल देता है।]

दुर्गा०—तुम लोग खड़े रहो। मैं भागूँगा नहीं। पचास जनोंके आगे एक आदमी अपनी रक्षा नहीं कर सकता। और अपने प्राण बचानेके लिए मैं अपने जाति-भाइयोंका खून बहाना भी नहीं चाहता। मैं एक स्त्रीके धर्मकी रक्षा कर सका, यही मेरी इस मृत्युका यथेष्ट पुरस्कार है। मैं उसकी जान न बचा सका, यही मुझे खेद है! अच्छी तरह जकड लो—बाँध लो। जो चाहे दण्ड दो।

(दुर्गादास तरवार फेंक देते हैं, दोनों हाथ आगे बढा देते हैं। सभाजीके इशारेसे डरते डरते कावलेसखॉं दोनो हाथ बॉंधता है ।)

संभाजी—दुर्गादास ! तुमको बड़ा घमड है !—अब बताओ, तुम्हें आगमें जलाऊं, या जीता ही गाड़ दूॅं ? क्या सजा दूॅं ? किस तरह मरना चाहते हो ?

कावलेसखॉं—सरकार ! अपने हाथसे मेहमानकी जान लेना मुनासिब नहीं । मेरी राय है, इसे इसके बड़े दोस्त औरंगजेबके पास भेज दीजिए ।—नतीजा एक ही होगा । फायदा यह होगा कि महाराजको अपने हाथसे बुरा काम न करना पड़ेगा ।

सभाजी—हॉं यही ठीक है । काबलेसखॉं ! इसको औरंगजेबकी सभामें पहुचा आओ । वहॉं भेजना और मौतके मुँहमे पहुँचाना एक ही बात है । (जोरसे हॅसना ।)

कावलेसखॉं—(स्वगत) इस तरह काबलेसखॉंकी मुट्ठी भी गर्म होगी—बहुत इनाम पाऊँगा ।

दुर्गा०—अच्छी बात है !—मैं मरने जाता हूँ । लेकिन याद रक्खो सभाजी ! एक दिन तुम्हारी भी यही दशा होगी—इसी कावलेसखाके हाथसे । जो अब भी अपना भला चाहो तो शराब पीना छोडो ! स्त्रियोंकी इज्जत करो और इस कावलेसखॉंका विश्वास न करो ।

(पटपरिवर्त्तन ।)

सातवाँ दृश्य।

स्थान—अहमदनगरका महल अन्तःपुर।

समय—रात्रि।

[बेगम गुलनार अकेली टहल रही है।]

गुलनार—(आप-ही-आप) हम लोग किसके लिए दक्खिन आये हैं? लोग जानते है कि औरंगजेब अकबरको पकड़नेके इरादेसे आये हैं—बीजापुर और गोलकुंडा फतेह करने आये हैं—मराठोंको काबूमें करने आये हैं।—ऐसा समझनेवाले बेवकूफ हैं। ये सब छोटे पुर्जे चल रहे है, मगर इनको चलानेवाला बड़ा चक्कर मैं ही यहाँ बैठे घुमा रही हूँ! अगर मेरी उँगलीका इशारा उधर न होता तो सैकड़ों अकबर, बीजापुर और सभाजी दिल्लीके बादशाहको दक्खिनकी तरफ घसीटकर न ला सकते।—कैसी भारी ताकतको कैसे खुले हाथों फिजूल खर्च कर रही हूँ!—बाँदी!—शराब ला।—दुर्गादास! दुर्गादास!—तुम अगर जानते—जान सकते—मैं तुमको कितना चाहती हूँ? तुमको अगर मालूम होता कि तुमने मेरे दिलमें कैसी मीठी-कड़वी, गर्म-सर्द, सख्त-मुलायम ख्वाहिश पैदा कर दी है! अगर तुम जानते कि मैं तुम्हारे लिए बादशाहको दिल्लीसे मारवाड़, और मारवाड़से दक्खिन तक घसीट लाई हूँ!—अगर इन बातोंकी खबर होती तो बेशक तुम मुझपर निसार हो जाते—मेरी आँखके इशारे पर नाचते!—बाँदी! शराब।—

(बाँदी शराब लाकर देती है। गुलनार शराब पीकर प्याला दूर फेंक देती है।)

गुल०—ओः कैसी प्यास है!—दुर्गादास! मैं शराब क्यों पीने लगी हूँ, जानते हो?—दुर्गादास! मैं इतनी कमजोर और लागर हो गई हूँ कि शायद आज तुम मुझे देखो तो पहचान न सको! ओफ़! इस इश्ककी यह कैसी आग है! इस जुनूँका यह कैसा जोश है! इस मर्जका यह कैसा मीठा दर्द है!

[औरंगजेबका प्रवेश।]

औरंग०—गुलनार!

गुलनार—जहाँपनाह! बन्दगी!

औरंग०—गुलनार! बड़ी अच्छी खबर सुनाने आया हूँ।—दुर्गादास पकड़ लिया गया।

गुलनार—(उत्सुक भावसे) सच! या दिल्लगी करते हो?

औरंग०—दिल्लगी नहीं प्यारी, सच बात है! कावलेसखाँ उसे पकड़ लाया है। कावलेसखाँको मैंने खुश होकर इनामके तौर पर तीस हजार अशर्फियाँ दी हैं। और उससे कह दिया है कि अगर संभाजीको पकड़ सकेगा तो इससे दसगुना इनाम पावेगा।

गुलनार—सच बात है! इतने दिनके बाद मैंने जाना प्यारे, तुम मुझे प्यार करते हो। हमारे दक्खिन आनेका मतलब आज पूरा हुआ।

औरंग०—लेकिन गुलनार! तुमने क्या शराब पी है?

गुल०—हाँ पी है। अब और एक प्याला दुर्गादासकी गिरफ्तारीकी खुशीका पियूँगी। बाँदी—

औरंग०—यह क्या गुलनार! मेरे महलके भीतर शराब पीना!

गुलनार—(गर्वके भावसे उठकर खड़े होकर) तो इससे हुआ क्या बादशाह सलामत?

औरंग०—जानती हो, मैं शराब पीनेके खिलाफ हूँ!

गुलनार—तुम हो सकते हो । मैं नहीं हूँ ।

औरंग०—तुम नही हो ? तुमने दीन इसलाम नहीं कुबूल किया ? तुम मुसलमान नहीं हुई ?

गुलनार—मैंने अपनी मर्जीसे दीनइसलाम कुबूल किया था । जी चाहे तो मै उसे छोड़ दे भी सकती हूँ !—दीन ? दीनके इन झगड़ोंके लिए मैं दुनियामे नहीं पैदा हुई । जरा मेरी तरफ देखो ! ये गोलगोल गुलाबी मुलायम हाथ देखो ! ये लंबे चिकने काले बाल देखो ! यह चमकीला सुनहला रग देखो ! यह हुस्न क्या मसजिदमें जाकर सिर फोडनेके लिए है ? तुम बड़े दीनदार और ईमानदार हो जहाँपनाह ! तो फिर महलमें मुझको न रखकर किसी मुल्लाकी बेटीसे निकाह करते !

औरंग०—तुमको होश नहीं है गुलनार कि तुम क्या बक रही हो ।

गुलनार—मुझे सब होश है—सुनो !—दुर्गादास कहाँ है ?

औरंग०—दिलेरखाँकी देखरेखमें ।—मैं सोच रहा हूँ कि उस पाजीको क्या सजा दी जाय । पहले—

गुलनार—उसे कोई सजा न देना । छोड़ देना ।

औरंग०—यह क्या ?—यह भी कहीं हो सकता है ?

गुलनार—हो सकता है, अच्छी तरह हो सकता है और इसे तुम खुद ही समझ रहे हो । उसे सिर्फ छोड़ ही न दोगे ! बल्कि मेरे साथ कैदखानेके भीतर चलोगे ! मैं कहूँगी, दुर्गादासको छोड दो—और तुम अपने हाथसे उसे छोड़ दोगे ।

औरंगजेब—तुमको होश नहीं है गुलनार ! तुमने बहुत शराब पी ली है ।—जब तुम होशमें आओगी तब बातचीत होगी । (प्रस्थान ।)

गुलनार—अच्छी बात है! मैं होशमें आती हूँ। दुर्गादास! तुमको मैं अपने हाथसे कैदसे छुड़ाऊँगी। मैं इसे अपने लिए बड़े ही फक्रकी बात समझती हूँ! मैं अपने हाथसे तुम्हारी हथकड़ी-बेडी खोलकर—तुमको अपनी छातीसे लगाकर—अपना इश्क जता कर—तुमको निहाल कर दूँगी! दुर्गादास! मैं तुमको दिल्लीके तख्त-पर बिठाऊँगी; और मैं तुम्हारी बेगम बनूँगी। तुम्हारे लिए वह कैसी इज्जत होगी!—और औरंगजेब! तुम तो मेरी इस मुट्ठीमें हो! तुमको तख्तसे उतारते कितनी देर लगती है!—दुर्गादास! मैंने तुम्हारी सब गलतियोंको—सब कसुरोंको—माफ किया। इतने दिनोंतक जो तुमने मुझे चाहकी आगमें जलाया—जंगल जंगल, पहाड पहाड अपने पीछे मुझे दौड़ाते रहे—सो सब मैंने माफ किया! दुर्गा-दास! आज तुम्हारे सब कुसूर मैंने माफ कर दिये! ओः आज कैसी खुशीका दिन है। (प्रस्थान।)

आठवाँ दृश्य।

स्थान—छावनीका कैदखाना।

समय—आधी रातसे कुछ पहले।

[हथकडी-बेडी पहने दुर्गादास बैठे हैं।]

दुर्गा०—अन्तको यह दशा भी हुई! जो लाञ्छना आजतक विजातीय विधर्मी शत्रुओंके हाथों नहीं हुई थी वही आज अपनी जातिके स्वधर्मी हिन्दूके हाथसे हुई!—सभाजी! तुम समझते हो कि मराठे लोग एक दिन राजपूतों और मुसलमानोंको एक साथ परास्त करेंगे। यह होता तो भी कुछ दुःख न था। किन्तु यह न होगा। देखोगे कि एक दिन मराठे, राजपूत और मुसलमान तीनों, एक साथ

किसी और जातिके पैरों पर लोटेंगे। विश्वासघातका दण्ड अवश्य अवश्य मिलता है।—कौन?—कैदखानेका दरवाजा किसने खोला?

[सिंगार किये हुए गुलनारका प्रवेश ।]

दुर्गा०—यह कैसी सुन्दर सजावट है! यह कैसी रूपकी ज्योति है!—आप कौन हैं?

गुलनार—मैं हूँ बेगम गुलनार!

दुर्गा०—बेगम गुलनार!—

गुलनार—पहचान नहीं पाते दुर्गादास? एक दफा हम लोगोंकी मुलाकात हो चुकी है। उस दिन मैं कैदीकी हालतमें थी। आज तुम मेरे कैदी हो।

दुर्गा०—आप मुझे दण्ड देने आई हैं?

गुल०—नहीं, मैं तुमको कैदसे रिहाई देने आई हूँ।

दुर्गा०—एहसानका बदला चुकानेके लिए?

गुल०—नहीं!

दुर्गा०—तो फिर?—बादशाहके हुक्मसे?

गुल०—गुलनार बादशाह औरंगजेबके हुक्मकी पर्वा नहीं रखती। आजतक वे ही मेरा हुक्म मानते आये हैं।

दुर्गा०—तो?

गुल०—मैं अपनी खुशीसे तुमको रिहाई देने आई हूँ।—क्यो कि मैं तुमको चाहती हूँ—तुम मेरे दिलदार हो!

दुर्गा०—यह क्या आप दिल्लगी करती है?

गुल०—तुम्हें बड़ा ताज्जुब मालूम पड़ता है?—मैं हिन्दोस्तानके बादशाहकी बेगम होकर एक राजपूत सरदारको दिलदार कह रही हूँ!

बेशक, ताज्जुब होनेकी बात ही है। लेकिन तुम मेरी मौजको नहीं जानते—मै मामूली औरतोकी तरह कोई काम नहीं करती। बादशा-हकी बेगम होकर भला कोई औरत इस तरह एक मामूली सरदारको 'दिलदार' 'दिलरुबा' कह सकती? लेकिन निरालापन ही मुझे पसद है! जो मामूली है, जिसे सब लोग कर सकते हैं, वह बेगम गुलनार नहीं करती। गुलनार जब घोड़ा दौड़ाती है तब उसकी रास छोड़ देती है। मामूली ऐश, आराम या खुशी वह नहीं चाहती। बेगम गुलनार आजाद है, हर काममें आजादी ही उसे पसन्द है!

दुर्गा०—लेकिन—बेगम—

गुल०—सुनो, मेरी बात सुनो। मेरा हर काम अनोखा, अचंभेका होता है। यह इतनी बड़ी मुगलोंकी सल्तनत क्या एक बड़ा भारी अचंभा नहीं है?—यह अचंभा मेरा ही खेल है! यह सल्तनत मज-मून है, दस्तखत बादशाहके हैं, इबारत मेरी गढ़ी है! मेरी उँगलीके इशारे पर सल्तनतमें जंग मच जाता है; और मेरी ही आँखके इशारेसे अमन चैन हो जाता है! मेरे मुस्कराकर देखनेसे कितने ही राजा बन जाते हैं, मेरी भौं टेढ़ी होते ही राजोंके राज-पाट मिट्टीमें मिल जाते हैं। इतने दिनोंसे यही होता आ रहा है। जिस दिन तुमने मुझे गिर-फ्तार किया था उस दिन उसे मैंने तकदीरका लिखा मान लिया था—किसी इन्सानके आगे सिर नहीं झुकाया। उसी दिन मैंने तुमको प्यारकी नजरसे देखा था! लेकिन अपनी चाह तुमको जताई नहीं। मैं तुम्हारे काबूमें, कैदीकी हालतमें थी। उस वक्त, मजबूर होनेकी हालतमें, फकीरकी तरह प्यारकी भीख माँगना मेरी आदतके खिलाफ था। आज तुम मेरे कैदी हो। यही चाह जतानेका ठीक मौका है।—दुर्गादास! मैं तुमको चाहती हूँ!

दुर्गा०—बेगमसाहब ! आपको शायद यह खयाल नहीं कि आप क्या बक रही हैं ।

गुल०—बादशाहको डरते हो ? आओ ! देखोगे, बादशाह मेरे गुलाम हैं; मैं उनकी लौंडी नहीं हूँ। तुमको मैं दिल्लीके तख्त पर बिठलाऊँगी !—आओ !

दुर्गा०—बेगमसाहब ! माफ कीजिएगा ।—बुरी राह पर चलकर मैं दुनियाका भी बादशाह होना नहीं चाहता ।

गुलनार—सल्तनत नहीं चाहते ?

दुर्गा०—नहीं बेगम साहब !—आप लौट जाइए ।

गुलनार—क्या ? तुम मुझे भी नहीं चाहते ?

दुर्गा०—नहीं । हम राजपूत लोग पराई स्त्रीको माता समझते हैं। अपनी इज्जत आप न रक्खें, मैं रक्खूँगा !

गुलनार—(दमभर सन्नाटेमें खड़े रहनेके बाद) क्या दुर्गादास ! बादशाह औरंगजेब जिसके इशारे पर चलते हैं उसी गुलनारके गले लगनेसे—उसकी उल्फतका दम भरनेसे तुम इनकार कर रहे हो ?

दुर्गा०—बेगम साहब ! जगतमें सभी औरंगजेब नहीं हैं । पृथ्वी पर औरंगजेब ऐसे आदमी भी हैं और दुर्गादास ऐसे भी।

गुलनार—यह क्या मुमकिन है !—जानते हो दुर्गादास, तुम्हारे लिए इसका नतीजा क्या होगा ?

दुर्गा०—जानता हूँ—मौत ।

गुलनार—नहीं, दुर्गादास तुम हँसी कर रहे हो ।

दुर्गा०—जीवनमें इससे बढकर गंभीर होकर मैंने कभी कोई बात नहीं की ।

गुलनार—क्या! मुझसे नफरत करते हो?—मेरा कहना तुमको मजूर नहीं? दुर्गादास, मै पहले ही कह चुकी हूँ कि गुलनार घुटने टेककर भीखकी तरह किसीसे प्यार नहीं माँगती—वह दुआकी तरह अपना प्यार बाँटती है।—पसन्द कर लो—बेगम गुलनारका प्यार या मौत!

दुर्गा०—पसन्द कर लिया, मै मौत चाहता हू।

गुलनार—मौत! अच्छा यही सही—मै अपने हाथसे तुम्हारी जान लूँगी।—गुलनारसे एक चीज पाओगे—मोहब्बत या मौत! अगर मोहब्बत नहीं चाहते तो मरनेके लिए तैयार हो जाओ—कामबख्श!

[गुलनारके पुत्र कामबख्शका प्रवेश।]

गुलनार—कामबख्श!—मारो! इसे मारो! इसी दम मार डालो—देख क्या रहे हो!—मारो!

कामबख्श—क्यों अम्मीजान!—बादशाहके हुक्मके—

गुलनार—बादशाहका हुक्म! मेरे हुक्मपर बादशाहका हुक्म! इसी दम मारो।—क्या! मेरा कहना न मानोगे? (चिल्लाकर) मारो—मारो—मारो!

कामबख्श—(तरवार खींचते खींचते) अच्छी बात है! तो मरनेके लिए तैयार हो जा कैदी।

दुर्गा०—मैं तैयार हूँ।

[कामबख्श दुर्गादासको मारनेके लिए तरवार उठाता है। इसी समय दिलेरखाँका प्रवेश।]

दिलेर०—खबरदार कामबख्श!—नहीं तो—

(कामबख्शकी तरफ पिस्तौल तानना।)

गुलनार—तुम कौन हो ?

दिलेरखाँ—मैं हूँ मुगल-फौजका सरदार दिलेरखाँ ।

गुलनार—क्या ! तुम्हारी इतनी मजाल कि तुम मेरे हुक्मके खिलाफ काम करो ?

दिलेर०—दिलेरखाँ किसीको नहीं डरता बेगमसाहब ! वह अपनी नेकचलनी और नेकनीयतीके भरोसे खुदाके सामने भी सच कहनेमें नहीं हिचक सकता, फिर तुम क्या चीज हो ।—गुनहगार ! बेहया !-- यह न समझना कि मैंने कुछ सुना नहीं । सब सुना है । (दुर्गादासकी ओर फिरकर) दुर्गादास ! बहादुर ! मै जानता था कि तुम ऊँचे दर्जेके आदमी हो, लेकिन यह मुझे खयाल न था कि तुम इतने ऊँचे दर्जेके आदमी हो । मैं अपने हाथसे तुम्हारी हथकड़ी-बेड़ी खोले देता हूँ । (बन्धन खोलकर) चले आओ बाहर—मै अपना सबसे अच्छा घोड़ा तुमको देता हूँ । साथमें पाँचसौ सवार देता हूँ । देशको लौट जाओ ।—मेरे हुक्मसे कोई मुगल-सरदार तुमसे न बोलेगा । चले आओ बहादुर ! बन्दगी बेगमसाहब !

(दुर्गादासका हाथ पकडकर दिलेरखाँका प्रस्थान । गुलनार और कामबख्श पत्थरकी मूर्तिकी तरह खडे रहते हैं ।)

[पर्दा गिरता है ।]



पाँचवाँ अंक ।



पहला दृश्य ।



स्थान—अकबरका डेरा ।

समय—रात्रि ।

[सिंहासन पर अकबर बैठे हैं । सामने नाचनेवालियाँ नाचती-गाती हैं ।]

नील गगन, चद्रकिरन, तारनगन ये ।
हेरो नयन हर्षमगन, सकल भुवन ये ॥ नील० ॥
निद्रित सब कूजन-रव नीरव भव ये ।
मोहन नव, हेरि विभव, धरनी नव ये ॥ नील० ॥
डोलत घन, स्निग्ध पवन, चाँदनि घन ये ।
नन्दनवनतुल्य भुवन, मोहत मन ये ॥ नील० ॥

अकबर—क्या बात है ! वाहवा ! सुभानअल्लाह !

[इसी समय हँसते हुए कावलेसखाँका प्रवेश ।]

अकबर—कौन ? कावलेसखाँ । सभाजी कहाँ है ?

कावलेस—अब सभाजी कहाँ ! शाहजादा ! सभाजी यों (गिरने सकेत)—

अकबर—इसके क्या माने ?

कावलेस—गुडुप हो गये !

अकबर—कुएँमें गिर पड़े ? शायद ज्यादा पी ली थी ?

कावलेस—नहीं साहब । सभाजी गिरफ्तार हो गये । अब यह —राजानके तबूमें हैं । हाथोंमें—(बन्धनकी अवस्थाका भाव दि

अकबर—यह क्या !—ऐसा होना गैरमुमकिन है !

कावलेस—गैरमुमकिन नहीं शाहजादा साहब! एकदम ठीक है। अब आप अपनी राह देखिए।

अकबर—तो क्या यह सच कह रहे हो कावलेसखाँ?

कावलेस—(सिर हिलाकर) बिल्कुल सच है शाहजादासाहब! झूठ बात शायद ही कभी कावलेसखाँकी जबानसे निकलती हो। संभाजी एकदम गिरफ्तार हैं। अब आपने क्या करना ठीक किया है? आपका मुँह तो स्याह पड़ गया!—(अकबर चुप रहते हैं)—सुनिए शाहजादासाहब! अगर मेरी राय आप पूछें तो मैं यही कहूँगा कि आप मेरे साथ बादशाहके पास चलें।

अकबर—(फीकी हँसी हँसकर) बादशाहके पास? उसकी बनिस्बत मैं शेरके सामने जानेको राजी हूँ।

कावलेस—शाहजादा साहब! आप मेरे साथ बादशाहके पास चलिए। कुछ डर नहीं है। वे आपको कुछ न कहेंगे। बल्कि खुश होकर तुम्हारी खातिर करेंगे। मैं जामिन होता हूँ।

अकबर—बादशाहके पास?

कावलेस—हाँ शाहजादासाहब! बादशाहके पास।—क्या राय है?

[दुर्गादासका प्रवेश ।]

दुर्गा०—(कावलेसखाँसे) नमकहराम! पाजी! विश्वासघातकी! पने जालमें शाहजादाको भी फँसाना चाहता है?

अकबर—यह क्या! दुर्गादास कहाँसे आ गये!

कावलेस—हाँ दुर्गा—(काँपता है)

दुर्गा०—कावलेस! तेरी अभिलाषा पूरी नहीं हुई। मैं जीता जाता लौट आया। यदि तूने मुझे शत्रुके हाथमें सौंप दिया था, तो

खैर कोई बड़ी बात नहीं। मैं तेरा कोई नहीं हूँ। मगर अन्तको तूने अपने स्वामी संभाजीसे भी दगा किया !—उनको भी पकड़ा दिया !—कृतघ्न ! नरपिशाच !

काबलेस—नहीं—मैंने नहीं—महाराज—

दुर्गा०—तूने नहीं ? काबलेस ! महाराज संभाजी तेरी सलाहसे एक गौने आई हुई ब्राह्मण बालिकाको हरनेके लिए गढ़के बाहर गये थे या नहीं ?—सच बोल, झूठ बोलनेसे छुटकारा न होगा।

काबलेस—(काँपते हुए) जी।

दुर्गा०—और तूने पहले ही यह खबर शाहजादा आजिमको दे रक्खी थी या नहीं ? उसके बाद आजिमने ५०० मुगल-सिपाही साथ लाकर महाराज संभाजीको कैद कर लिया।—क्यों न ? ठीक है न ?

काबलेस—जी ! (भागना चाहता है)

दुर्गा०—भाग मत। (काबलेसखाँकी गर्दन पकड़कर) काबले-सखाँ ! खुदाको याद कर ले।

काबलेस—माफ करो खुदावन्द—मैं आपका कुत्ता हूँ।

(भयसे विह्वल काँपता हुआ काबलेसखाँ दुर्गादासके पैर पकड़ता है।)

दुर्गा०—जा, तुझे न मारूँगा। तेरी हत्या करके अपने हाथोंको अपवित्र और कलंकित न करूँगा। तूने संभाजीका परलोक बिगाड़-कर अन्तको यह लोक भी बिगाड़ा। तुझे नरकमें भी जगह नहीं मिलेगी—जा। (लात मारकर काबलेसखाँको निकाल देते हैं)—शाहजा-दासाहब ! एक दिन मैंने संभाजीसे कहा था कि यह शराब और यह ऐयाशी ही तुम्हारा सर्वनाश करेगी और वह सर्वनाश इसी काबलेसखाँके हाथसे होगा।—और ठीक वही हुआ !—शाहजादा साहब ! इस दृष्टान्तसे शिक्षा प्राप्त कीजिए। पहले भी कई बार कह चुका हूँ,

और आज फिर कहता हूँ—शराब और वेश्या छोड़िए।—ये दोनो नशे बहुत भयानक है।

अकबर—बहुत ज्यादा देर हो गई दुर्गादास! बहुत ज्यादा देर हो गई।

दुर्गा०—कुछ भी देर नहीं हुई शाहजादा साहब, अभी समय है। कोई प्रवृत्ति ऐसी नहीं, जो दबाई न जा सके। उसके लिए आन्तरिक चेष्टा होनी चाहिए। आप अच्छे वंशके लड़के हैं, आपने अच्छी शिक्षा पाई है, आप उच्च हृदयके आदमी हैं। आप चेष्टा करे तो क्या इन बुरी आदतोंको छोड़ नहीं सकते?

अकबर—(दमभर चुप रहकर) दुर्गादास। तुमने ठीक कहा। मैं इस नशेको छोड़ दूँगा। सिर्फ यही नशा नहीं। इस दुनियाका नशा छोड दूँगा। सब छोड़ दूँगा।

दुर्गा०—यह क्या शाहजादा साहब!

अकबर—हाँ दुर्गादास! सब छोड़ दूँगा! इस जिन्दगीसे नफरत हो गई है। दूसरोंके गले पडकर जिन्दगी बिता रहा हूँ, तब भी ऐश-आराममें डूबा हुआ हूँ! यह तबियतकी कमजोरी क्या कम नालायकी है।—इस बातका ऐसा खयाल आजतक मुझे कभी नहीं हुआ। (सिर झुका लेते हैं)

दुर्गा०—सुनिए शाहजादा साहब! मेरे साथ मारवाड चलिए—जब तक मैं जियूँगा तबतक आपको कुछ डर नहीं है।—चलिए।

अकबर—नहीं दुर्गादास! मैं मारवाड न जाऊँगा। मैं मक्केशरीफकी जियारतको जाऊँगा। बहुत दिनोंसे तुम्हारे गले पडा हुआ हूँ। मेरी वजहसे तुमको बहुत तकलीफें उठानी पडी हैं। माफ करो। मुझे बचानेके काममें तुमने अपने देश और अपने आदमियोंको छोड़ दिया।

मेरे कारण तुम्हारा बहादुर भाई मरा—और तुम भी मौतके मुँहसे लौट आये।

दुर्गा०—यह मेरा धर्म था शाहजादा साहब! कर्त्तव्य था—फर्ज था।

अकबर—फर्ज था! मैं भी मक्के जाकर इसी तरह फरायजको पूरा करना सीखूँगा। बहुत गुनाह किये हैं; किसी भी काममें मन नहीं लगाया, ऐश-आराममे ही इतनी जिन्दगी बिताई है। बापका बागी बना, लापर्वाही करके औरतकी जान ले ली, जानबूझकर अपने लिए तुमको मुसीबतमे डाला—दुख पहुँचाया। आखिरको सभाजीके मरनेका सबब हुआ। जाता हूँ दुर्गादास! मेरे लिए जहाँ इतना किया है वहाँ इतना और करना। तुम अपने देशको जाओ—मेरी रजियाका ख्याल रखना। उसकी हिफाजत करना दुर्गादास!—मै उसको तुम्हें सौंपे जाता हूँ।—अच्छा जाता हूँ मेहर्बान दोस्त!

(अकबर दुर्गादाससे हाथ मिलाते है।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—जयसमुद तालावके किनारेका राजमहल।

समय—सायंकाल।

[जयसिंह और कमला, दोनों महलके बरामदेमे खडे बाते कर रहे हैं।]

जय०—कमला, तुम मुझसे विमुख न होना। तुम्हारे लिए मैने देश छोडा है, राज्य छोड़ा है, पुत्र छोडा है।

कमला—किसने छोड़नेके लिए कहा था?

जय०—तुमने।

कमला—कभी नही । मैने केवल यह कहा था कि बड़ी रानी और छोटी रानीमेंसे एकको पसद कर लो । दोनोंके होकर नहीं रह सकते ।

जय०—मैंने तुमको लिया । बडी रानीको छोड़ दिया ।

कमला—किन्तु राज्य छोड देनेके लिए मैने नहीं कहा था । बडी रानीके लड़के अमरसिंहको राज्य दे आनेके लिए नहीं कहा था । मेरा पुत्र क्या कोई है ही नहा ?

जय०—ओः ! इसीके लिए तुमसे बड़ी रानीसे झगड़ा हुआ था ! तो तुमने इतने दिनोंतक बताया क्यों नहीं कमला ? बड़ी रानीने पुत्रके अमगलकी आशकासे उस दिन लड़ाई झगड़ेका कारण नहीं बतलाया। अब समझमें आया—कमला ! राज्य तो अमरसिंहका ही है । अमरसिंह बड़ा लडका है । शास्त्रके अनुसार बड़ा लड़का ही राज्यका उत्तराधिकारी होता है ।

कमला—तो तुम शास्त्रको मुझसे बढकर मानते हो ?

जय०—एक दिन मैं तुमको सब शास्त्रोंसे बढ़कर मानता था ।

कमला—हा !—तो फिर तुम्हारी क्या यह इच्छा है कि तुम्हारे मरनेके बाद मैं खाने-पीनेके लिए बड़ी रानीके अधीन रहूँ ?

जय०—(सन्नाटेमें आकर, दमभरके बाद) कमला, तुमको इतना आगेका खयाल है ? मैने तो कभी इतना सोचा नहीं—तो तुमको पुत्रके लिए नहीं, अपने लिए चिन्ता है ?

कमला—अपने लिए चिन्ता करना क्या इतना बुरा है राना ! कौन अपने लिए चिन्ता नहीं करता महाराज !

जय०—कहॉ ! मैने तो कभी अपने लिए चिन्ता नहीं की रानी ! मैं राना राजसिंहका पुत्र हूँ । मै चाहता तो क्या नहीं हो सकता था !

यश, मान, ऐश्वर्य, प्रभुत्व और विलास छोड़कर—अपनी जातिका धिक्कार स्वीकार कर—मैं तुम्हारे लिए वनवासी हुआ हूँ। आगेकी कौन कहे, मैंने तुम्हारे कारण जो था, उसे भी छोड दिया।

कमला—मेरे लिए छोड़ दिया! या मेरे रूपके लिए? तुमने मुझे व्याहा था मेरे लिए नहीं, मेरे रूपके लिए। मैंने भी तुमसे व्याह किया था तुम्हारे लिए नहीं, तुम्हारे राज्यके लिए।

जय०—मेरे राज्यके लिए! यह क्या मैं सुन रहा हूँ!—इतने दिनोंतक तो क्या मैं प्रेमका स्वप्न ही देख रहा था! मैंने सोचा था कि तुमने अपना हृदय मुझे अर्पण कर दिया है! मैं सोचता था कि तुमने यह रूप-वैभव अपनी इच्छासे मुझे सौंप दिया है! मै तुम्हारे इस दानके मोहमे मुग्ध हो रहा था। कमला! तुमने मेरा बडे सुखका स्वप्न मिटा दिया!—कमला! कमला! तुम नही जानतीं कि तुमने मेरा कैसा सर्वनाश कर डाला!

कमला—मैंने तुम्हारा सर्वनाश किया, या तुमने मेरा सर्वनाश किया?

जय०—रानी! मै तुम्हारे रूपके लिए तुमको प्यार करता हूँ? कहाँ है वह रूप? अब तो वह रूप नहीं देख पड़ता। न जाने कहाँसे आकर एक दिव्य ज्योति तुम्हारे मुख पर पड रही थी; वह चली गई! इस समय तुम्हारे मुख पर उस रूपका ढाँचा भर दिखाई पड़ रहा है। रानी!—कुछ रूप तो ईश्वरके यहाँसे मिलता है और कुछ सौन्दर्य स्त्री आप उत्पन्न कर लेती है। स्त्रीके उज्ज्वल हृदयकी प्रतिभा उसके मुख पर झलककर एक नवीन राज्य—एक सुन्दर स्वर्ग—की रचना करती है। वाहरी रूप उसके आगे कोई चीज नहीं है। रानी तुम भूलती हो! मै केवल रूपके लिए ही तुमको प्यार नहीं करता था—तुम्हारे लिए ही तुम्हें प्यार करता था।

कमला—झूठ बात है ।

जय०—रूप? संसारमें क्या रूपकी—सौन्दर्यकी—कमी है रानी? जहाँ अँधेरेका और चाँदनीका इंद्रजालका खेल होता है—अन्नके हरेभरे खेतोंमें हरियालीकी शोभा लहराती है—अनन्त नील आकाशका पसार है, जहाँ जिधर देखो उधर ही सौन्दर्य, सुगन्ध, संगीतकी भरमार है, जहाँ आकाशके हृदय दिनरात सौन्दर्यकी वर्षा हुआ करती है—पृथ्वीके भीतरसे निकले हुए फूलोंसे रूप और सुगन्धका फुहारा छूटा करता है, उस संसारमें मैं तुम्हारे निकट रूपके लिए गया था? कहाँ है वह तुम्हारा रूप कमला? कहाँसे आया था? अब कहाँ चला गया?

कमला—अब तुम्हारा अभिप्राय क्या है?

जय०—अभिप्राय! मालूम नहीं। मोहका नशा उतर गया है। लेकिन बहुत ही अचानक। मुझे समय दो।—रूप! रूप! बाहरी रूप! हृदय-हीन नारीका रूप—

[दरवानका प्रवेश ।]

दरवान—(प्रणाम करके) महाराना साहब! मन्त्रीजी मिलना चाहते हैं।

जय०—मन्त्री!—यहाँ?—जाओ, यहीं ले आओ।

(दरवानका प्रस्थान ।)

जय०—(कमलासे) लेकिन कमला, इतने दिनतक किस तरह किस उपायसे तुम अपने नीच हृदयको सुन्दर पर्देसे ढके रहीं! रत्तीभर भी मुझे मालूम नहीं हुआ कि तुम इतनी ओछी तबियतकी हो! जाओ कमला, भीतर जाओ, तुम पर मुझको क्रोध नहीं है। तुमको भी बड़ी आशा थी, पर निराश होना पड़ा—और मुझको भी बड़ी आशा थी, पर निराश होना पड़ा। भीतर जाओ।

कमला—(जाते जाते, स्वगत) शायद जो था वह भी खोया !

(प्रस्थान।)

जय०—इसीके लिए मैंने सब छोड़ दिया! साक्षात् लक्ष्मीसी बड़ी रानी सरस्वतीको छोड़ आया ! सरस्वती ! अब शायद मैं कुछ कुछ तुमको पहचान सका हूँ। उस दिन तुमने सच कहा था कि "यह प्रेम नहीं, मोह है... एक दिन छूट जायगा।" सरस्वती ! तुम सदा सच बोलती हो, किन्तु यह तुम्हारी बात सबसे बढकर सत्य है।

[मन्त्रीका प्रवेश।]

जय०—क्यों मन्त्रीजी ! राज्यकी खबर क्या है ?

मन्त्री—रानासाहब ! मैं नौकरी छोडना चाहता हूँ।

जय०—क्यो-क्यों ! क्या हुआ मन्त्रीजी ?

मन्त्री—क्या बताऊं, क्या हुआ। रानासाहबके बड़े कुअँरने मेरा बड़ा अपमान किया है। मैं इस पद पर काम करते बुड्ढा हो गया, पर मेरा ऐसा अपमान कभी नही हुआ।

जय०—क्या अपमान किया ?

मन्त्री—कुअँर अमरसिंहने एक दिन एक मस्त हाथी खोलकर शहरमें छोड़ दिया। उसने कई पुरवासियोंको मार डाला। मैंने उसके लिए कुअँरसे कहा सुना तो उन्होंने सिर मुडाकर गधेपर चढ़ाकर शहरभरमें मुझे घुमाया।

जय०—यहाँ तक ! अमरको यह खयाल नहीं कि मैं उसे तुम्हारी देखरेखमें छोड़ आया हूँ।

मन्त्री—उनके किसी भी कामसे यह प्रकट नहीं होता कि उनके हृदयमें आपके प्रति श्रद्धा या भक्ति है।

जय०—चलो! कल मै राजधानीको लौट चलूँगा—और इस मामलेका यथोचित विचार करूँगा।—चलो।—(मंत्रीका प्रस्थान।) नारी!—नारी! तुम इतनी बनावट कर सकती हो?—हाँ अब समझ रहा हूँ! अब सब समझमें आ रहा है!— (प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।



स्थान—जोधपुर। गढका शिखर।

समय—चाँदनी रात।

[अजितसिंह और रजिया एक चबूतरे पर बैठे हैं।]

रजिया—कैसा सुन्दर चाँद निकल रहा है, देखो अजित! वह देख रहे हो, पूरबमें एक काले बादलके ऊपर निकल रहा है। बादलके ऊपरी हिस्सेमें जैसे किसीने चारों तरफ़ एक सुनहली लकीर खींच दी है। बादलके नीचेका सब हिस्सा खूब गाढे काले रंगका है। चांदका चौथाई हिस्सा बादलके ऊपर दिखाई पड़ रहा है।—कैसा खूबसूरत, कैसा ठंडक पहुँचानेवाला, कैसा चटकीला चाँद है!—कैसा सुन्दर देख पड़ रहा है अजित!

अजित०—नहीं, मैं तो केवल तुमको देख रहा हूँ!

रजिया—तो तुम बडी भूल कर रहे हो। इस धरती पर चारों तरफ इतनी देखनेकी चीजें हैं, उन्हें छोड़कर मुझे देखते हो? कैसी सुंदर यह धरती है! मुझे जान पड़ता है, यह दुनिया एक ऐसा गीत है जो कभी न थकता है, न रुकता है और न कभी खतम होता है। यह असमानी नीला रंग उसका 'चढाव' है, यह धरतीकी हरियाली उसका 'उतार' है। रोशनी उसकी 'दून' है। अँधेरा उसकी

'सम' है। ये पहाड़ उनकी 'तान' है। ये लहरें उसकी 'मींड' है। कैसी सुन्दर धरती है अजित!

अजित०—मुझे तुम्हारा मुख ही सबसे सुन्दर देख पड़ता है।

रजिया—तुम मेरे चेहरेको ही सबसे सुन्दर देखते हो? यह अधखिली गुलाबकी कलीकी शरमीली नजरसे बढकर सुन्दर है? किनारे पर थिरकती हुई लहरोंके खेलसे बढ़कर सुन्दर है? इस काले बादलमें छिपे हुए चाँदसे भी बढकर सुन्दर है? अजित! तुम अभी बिल्कुल बच्चे हो।

अजित०—मै अब बच्चा नहीं हूं, इसीसे तुम्हारे मुखको सबसे बढ़कर सुन्दर देखता हूं। इस समय रजिया, मैं समझता हूँ कि जगतका श्रेष्ठ सार-सौन्दर्य स्त्रीजाति है। और स्त्रियोंमें रत्न तुम हो।

रजिया—मैं! मुझे इस पर यकीन नहीं।

अजित०—रजिया! तुम मुझे प्यार नहीं करतीं, इसीसे तुमको विश्वास नहीं होता।

रजिया—प्यार नहीं करती? माल्रूम नहीं, प्यार करना किसे कहते है अजित! लेकिन हाँ, अगर जिसे प्यार करो उसे हरघड़ी देखनेको जी चाहता हो—अगर उसे देखकर, उसकी आवाज सुनकर, नस-नसमें बिजली दौड़ जाती हो—तो मैं तुमको प्यार करती हूँ।—बहुत प्यार करती हूँ!

अजित०—मुझे चाहती हो रजिया?—सच?—

रजिया—झूठ बोलना मैने सीखा ही नहीं।

अजित०—प्यारी! (हाथ पकडना।)

रजिया—प्यारे! (गाती है।)

गीत।

आओ बाँधूँ तुम्हें बाहुके पाशमें, वधु आओ हृदयमें जगह तुमको दूँ।
धरके छातीमें सिर, हो मगन, प्रानधन, आँख मूँदे हुए सुखकी मैं नींद लूँ ॥
लुप्त हो यह सभी विश्व, अनुभव करें दो हृदय आज आनन्दसे प्रेमका ।
उन मिले दो हृदयका मधुर गीत मैं आँख कुछ बंद कर मस्त होकर सुनूँ ॥
वायु बाहर चले वेगसे, मेघमें वज्र बिजली कड़कती रहे जोरसे ।
चन्द्रमा सूर्य तारा न हों एक भी, घोर तम छा रहे, तुम रहो—मैं रहूँ ॥
हम तुम्हारे हुए, तुम हमारे हुए, मित्र हम तुम हैं, बस सिर्फ यह ख्याल हो ।
लुप्त संसारसे और सब शेष हो, प्राणप्यारे! तुम्हारा ही मैं दम भरूँ ॥

[गाते गाते रजिया अजितके गले लग जाती है। ठीक इसी समय मुकुन्ददासका प्रवेश ।]

मुकुन्द०—महाराज—(रजियाको अजितके गलेसे लगे हुए देख कर लौटते हैं।)

अजित०—क्यों मुकुन्दराज! कोई जरूरी खबर है?

मुकुन्द०—हाँ महाराज! सेनापति दुर्गादास दक्खिनसे आगये हैं।

अजित०—कौन? दुर्गादास आये हैं? कहाँ है?

मुकुन्द०—बाहर ।

अजित०—चलो! अच्छा नहीं, उन्हें यहीं ले आओ ।

मुकुन्द०—जो आज्ञा । (प्रस्थान ।)

अजित०—जाओ रजिया, अपने कमरेमें जाओ ।—

(रजिया जाती है।)

अजित०—दुर्गादास लौट आये? मेरे रक्षक, देशका भरोसा दुर्गादास लौट आये—तो इससे एक तरहकी प्रसन्नता होनी चाहिए। मगर मेरे मनमें खटकासा क्यों पैदा हो गया? यह कैसी चिन्ता है, जो मेरे चिरसंचित स्नेह, भक्ति और कृतज्ञताके भावको मथकर गँदला

बना रही है! नहीं, यह बहुत ही अनुचित है! नहीं, इस भावको—इस प्रवृत्तिको—मनसे दूर करना चाहिए।

[मुकुन्ददास और शिवसिंह, दोनो सामन्तोके साथ दुर्गादासका प्रवेश।]

दुर्गा०—महाराज! सेवक सेवामें आ गया। कुअँरको (गद्गद स्वरसे) महाराज कहकर प्रणाम करनेकी बहुत दिनोंकी मेरी आशा आज पूरी हुई। महाराज, प्रणाम। (पद-चुम्बन।)

अजित०—भक्त बन्धु! मेरे प्रियतम सेनापति! कुशल तो है?

दुर्गा०—हाँ अभी तक तो कुशल है।—महाराज! तो आपने स्वयं ही सामन्तोंको दर्शन दिये?

अजित०—हाँ, मैंने आप ही सामन्तोंसे भेट की।

मुकुन्द०—(दुर्गादाससे) स्वामी! बहुत दिन तक मैं इस पर राजी नहीं हुआ। मैंने कहा—स्वामीकी आज्ञा बिना महाराजके दर्शन नहीं मिल सकते। पर सामन्तोंने किसी तरह नहीं माना। उन्होंने कहा—हम महाराजके दर्शन करेंगे।—कुछ न मानेंगे।

दुर्गा०—चलो अच्छा ही हुआ।—सब सामन्तोंने महाराजकी यथोचित अभ्यर्थना की थी?

मुकुन्द०—अभ्यर्थना! बड़े उत्साहसे—बड़ी धूमसे महाराजकी अभ्यर्थना की गई थी! चैत्रकी संक्रान्तिको महाराजने सामन्तोंको दर्शन दिये थे। वहाँ पर दुर्जनसाल, उदयसिंह, तेजसिंह, विजयपाल, जगतसिंह, केसरीसिंह और और बहुतसे सामन्त उपस्थित थे। सब महाराजको घेरकर जयध्वनि करने लगे। घर-घर गली-गली उत्सवकी धूम मच गई।—स्वामी! उस दिनका वह दृश्य अपूर्व ही था!

दुर्गा०—अच्छी बात है!—इधर युद्धकी क्या खबर है शिवसिंह!

शिव०—औरंगजेबने मुहम्मदशाहको जसवन्तसिंहका एक पुत्र कहकर जोधपुरके राजाके नामसे खडा किया था । वह मर भी गया । जोधा हरनाथने शुजायतखाँको कच्छ तक भगा दिया । महाराज (अजितसिंह) ने खुद अजमेर जाकर सैफीखाँको परास्त किया ।

मुकुन्द०—सब अच्छी खबर है सेनापति! किन्तु वीर समरसिंहकी शोचनीय मृत्युसे सब जय फीकी जान पड़ती है ।

अजित०—सेनापति! जयसिंहके पुत्र अमरसिंहने अपने पिताके विरुद्ध युद्ध ठाना है । जयसिंहने मारवाड़से सहायता माँगी है । सेनापति! तुम सेना लेकर जयसिंहकी सहायता करने जाओ ।

दुर्गा०—जो आज्ञा महाराज। कल सवेरे ही जाऊँगा!—कासिम कहाँ है?

शिव०—वह बीमार है। नहीं तो सबसे पहले आकर वह स्वामीके चरणोंमे प्रणाम करता ।

दुर्गा०—बीमार है! क्या बीमारी है? कहाँ है वह?

शिव०—भीतर कोठरीमें सो रहा है। विशेष कुछ नहीं, ज्वर—साधारण ज्वर है ।

दुर्गा०—चलो—उसे देख आवें—	(सब जाते हैं ।)

चौथा दृश्य ।



स्थान—दक्खिनमे मुगलोंका पडाव ।

समय—प्रात काल ।

[औरंगजेब और दिलेरखाँ खडे हुए बाते कर रहे है ।]

औरंग०—दिलेरखाँ! तो अकबर ईरान चला गया?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह! एक अँगरेजोंके जहाज पर चढकर

धुआँ उड़ाते हुए उसी तरफ चले गये।—वहाँसे—सुन पड़ता है—मक्केशरीफको जायँगे।

औरंग०—(लंबी साँस लेकर) उसकी नसीहत और तालीमके लिए इतनी मेहनत, कोशिश और खर्च सब बेकार हुआ!

दिलेर०—नहीं जनाब! नसीहत और तालीमका तो नतीजा बहुत अच्छा देख पड़ा। अगर ऐसा न होता तो शाहजादेको पछतावा न होता।

औरंग०—मैं भी मक्केशरीफको जाऊँगा! मैं अपनी जिन्दगीके सब काम कर चुका। सिर्फ एक काम बाकी है। रजियाको दुश्मनोंके हाथसे निकालना। तुम अगर दुर्गादासको छोड़ न देते तो शायद मक्का जानेके पहले यह काम भी मैं कर जा सकता।

दिलेर०—दुर्गादासको डर दिखाकर? नहीं जहाँपनाह! यह नहीं हो सकता था। डर किसे कहते हैं, सो वह बहादुर जानता ही नहीं। उस रातको कामबख्शने जब दुर्गादासके सिर पर तरवार तानी थी तब दुर्गादास इस तरह छाती फुलाकर खड़ा हुआ था जनाब कि मैं दंग रह गया। उस वक्त जो मैंने देखा उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। एकाएक उसका सिर पहाड़की चोटीकी तरह ऊँचा और सीधा हो गया! उसकी छाती आसमानकी तरह चौड़ी होगई।—उस बहादुरको इतना ऊँचा इतना चौड़ा और कभी मैंने नहीं देखा जनाब!

औरंग०—हाँ दिलेरखाँ! दुर्गादास बेशक एक बहादुर और ऊँचे खयालातका आदमी है। लेकिन—

दिलेर०—जहाँपनाह! मैं देखता हूँ कि फर्जके लिए राजपूत सिर्फ मरनेको ही नहीं डरते—वे फर्जके लिए मरनेमें एक तरहका फख्र समझते हैं। और उन राजपूतोंमें सबसे बढ़कर दुर्गादास है।

औरग०—मैं इस बातको मानता हूँ दिलेरखाँ !—तो फिर रजिया दुश्मनोके हाथसे नहीं निकल सकती ?

दिलेर०—यह बात नहीं है जहाँपनाह ! मै इस कामको कर सकता हूँ, अगर हुजूर इस मामलेमें मुझे पूरा पूरा अख्तियार दें ।

औरग०—कैसे यह काम करोगे ?

दिलेर०—जहाँपनाह ! मै जानता हूँ कि राजपूत जातिसे खास कर इस दुर्गादाससे किस तरह काम निकाला जा सकता है । उसकी इज्जत कीजिए, उस पर यकीन लाइए, तो वह फूलसे भी बढ़कर मुलायम है । उसे डर दिखाते जाइए—धमकाइए—तो वह लोहेसे भी कड़ा है ।

औरग०—अच्छी बात है । मै तुमको इस बारेमे पूरे अख्तियारात देता हूँ । मेरा दिमाग सही नहीं है । मैंने समझकी गल्तीसे मौजमको दुश्मन बना लिया, आजिमको लालची बना डाला, अकबरको बागी और कामबख्शको शैतान बना दिया ! लेकिन तो भी समझमें कहाँ पर गल्ती है, सो कुछ समझमें नहीं आता ।

दिलेर०—जनाब ! अगर यही मालूम हो जाय कि गल्ती कहाँ पर है तो फिर गल्ती रहे ही क्यों ?

[कावलेसखाँका प्रवेश ।]

औरंग०—क्या है कावलेसखा ?

कावलेस०—हुजूर ! समाजीको गधेकी पीठ पर चढाकर शहरभरमें घुमाया जा चुका । काफिर रास्तेमें चिल्लाचिल्लाकर कहता जाता था कि 'मुझे कोई मार डालो ।' लेकिन किसीकी हिम्मत नहीं पड़ी ।—उसे अब यहाँ ले आऊँ खुदावन्द ?

औरग०—ले आओ ।

कावलेस०—मेरा इनाम खुदावन्द !

औरंग०—दूँगा कावलेस! दूँगा, खूब इनाम दूँगा।

(सलाम करके कावलेसखाँका प्रस्थान।)

औरंग०—दिलेरखाँ! अब मुझे जिन्दगीसे नफरतसी हो गई है। मेरी खुशी जाती रही है। मेरी कमर जैसे टूट गई है। (थोडी देर चुप रहकर) जिसे कभी सोचा न था—मेरी बेगम—हिन्दोस्तानके बादशाहकी बेगम—उसे मैंने क्या नहीं दिया था!—उसका यह हाल! दिलेरखाँ! मैंने कभी—ख्वाबमें भी—यह नहीं सोचा था।

दिलेर०—जहाँपनाह! मै बराबर यही देखता आ रहा हूँ कि आदमी जिस बातको कभी नही सोचता, वही सबसे पहले आगे आती है।

[पिंजडेमें बन्द सम्भाजीको साथ लिये आजिम, कावलेसखाँ और सिपाहियोंका प्रवेश।]

औरंग०—यही मराठा बहादुर है! क्यों महाराज! कुरानको और बुरा कहोगे? मसजिदोंको तोडो और नापाक करोगे? मुल्लाओंकी बेइज्जती करोगे?—जबाब क्यो नही देते?

कावलेस०—हुजूर! यह जबाब किस तरह दे? कुरानको यह बुरा कहता था, इस लिए इसकी जबान काट ली गई है।

औरंग०—मराठे बहादुर! अब भी बता, कुरान—कलमा पढेगा? अगर अब भी यह मंजूर कर, तो मै तेरी जान बख्श सकता हूँ।

(सम्भाजी औरंगजेबके उद्देश्यसे पिंजडेके घेरेमें लात मारते हैं।)

कावलेस०—हुजूर, अबकी लातमें पिंजड़ा टूट जायगा! जहाँपनाह! जल्द इसके कत्लका हुक्म दीजिए। नहीं तो—

औरंग०—जाओ, अभी इसका कटा हुआ सिर मेरे सामने पेश करो।

(सम्भाजीको लेकर आजिम, कावलेसखाँ और सिपाहियोंका प्रस्थान।)

औरंग०—दिलेरखाँ! सन्नाटेमें क्यों आगये?—बोलते क्यो नहीं?

दिलेर०—इसके ऊपर अब मुझे कुछ नहीं कहना है। बहादुरसे बहादुरको शायद ऐसा ही बर्ताव करना चाहिए!

औरंग०—सभाजी अगर कल्मा पढने पर राजी हो जाता तो मैं उसको माफ कर देता।

दिलेर०—अगर सभाजी इस वक्त मौतके डरसे कल्मा पढ़ने पर राजी हो जाते तो मै उनसे नफरत करता।—जनाब! आप क्या यह चाहते हैं कि कोई अपनी समझ और यकीनके खिलाफ दीनइसलामको माने?

औरंग०—दिलेरखाँ, इस दीन-इसलामको फैलानेके लिए ही मै इस तख्त पर बैठा हूँ। इसीके लिए बापको कैदखानेमें बंद किया, भाईका खून अपने सिर लिया। खुदा जानता है।

दिलेर०—यह मैं जानता हूँ जनाब! मैं आपको मजहबके बारेमे कट्टर मुसलमान समझकर ही अबतक आपका साथ दे रहा हूँ। अगर आपको मजहबकी आड़मे मनमानी करनेवाला मक्कार समझता तो अबसे बहुत दिन पहले बन्दा बन्दगी करके चल देता।—लेकिन बादशाह सलामत, कहीं सीनेजोरीसे मजहब बढ सकता है? तरवारकी वारसे दीन पर यकीन दिलाया जा सकता है? ठोकरें मारकर रिआया माफिक की जा सकती है? जहाँपनाह! मै फिर कहता हूँ—इस रास्तेसे लौटिए। अब भी हिन्दुओंकी मुखालफत छोड़िए। हिन्दू और मुसलमानोंके दिल मिले। मन्दिरों और मसजिदोंमें आजादीके साथ लोग परमेश्वर और खुदाका नाम ले। एकसाथ आसमानमें अजाँ और शखकी आवाज गूँज उठे। हिन्दू और मुसलमान एक दफा कौमी दुश्मनी भूलकर—एक दूसरेको भाई समझकर—गले लग जांय। उसी दिन हिन्दोस्तानमें एक छोरसे दूसरे छोरतक ऐसी एक बादशाहत कायम हो जायगी जैसी दुनियाभरमें कभी किसीने नहीं देखी।

औरंग०—दूँगा कावलेस ! दूँगा, खूब इनाम दूँगा ।

(सलाम करके कावलेसखाका प्रस्थान ।)

औरंग०—दिलेरखाँ ! अब मुझे जिन्दगीसे नफरतसी हो गई है। मेरी खुशी जाती रही है। मेरी कमर जैसे टूट गई है। (थोडी देर चुप रहकर) जिसे कभी सोचा न था—मेरी बेगम—हिन्दोस्तानके बादशाहकी बेगम—उसे मैंने क्या नहीं दिया था !—उसका यह हाल ! दिलेरखाँ ! मैंने कभी—ख्वाबमें भी—यह नहीं सोचा था।

दिलेर०—जहाँपनाह ! मैं बराबर यही देखता आ रहा हूँ कि आदमी जिस बातको कभी नहीं सोचता, वही सबसे पहले आगे आती है।

[पिंजडेमें बन्द सम्भाजीको साथ लिये आजिम, कावलेसखाँ और सिपाहियोंका प्रवेश ।]

औरंग०—यही मराठा बहादुर है ! क्यों महाराज ! कुरानको और बुरा कहोगे ? मसजिदोंको तोड़ो और नापाक करोगे ? मुल्लाओंकी बेइज्जती करोगे ?—जवाब क्यो नही देते ?

कावलेस०—हुजूर ! यह जवाब किस तरह दे ? कुरानको यह बुरा कहता था, इस लिए इसकी जबान काट ली गई है।

औरंग०—मराठे बहादुर ! अब भी बता, कुरान—कलमा पढेगा ? अगर अब भी यह मंजूर कर, तो मै तेरी जान बख्श सकता हू ।

(सम्भाजी औरंगजेबके उद्देश्यसे पिंजडेके घेरेमे लात मारते है।)

कावलेस०—हुजूर, अबकी लातमें पिंजड़ा टूट जायगा ! जहाँपनाह ! जल्द इसके कत्लका हुक्म दीजिए। नहीं तो—

औरंग०—जाओ, अभी इसका कटा हुआ सिर मेरे सामने पेश करो।

(सम्भाजीको लेकर आजिम, कावलेसखाँ और सिपाहियोंका प्रस्थान ।)

औरंग०—दिलेरखाँ ! सन्नाटेमें क्यों आगये ?—बोलते क्यों नहीं ?

दिलेर०—इसके ऊपर अब मुझे कुछ नहीं कहना है। बहादुरसे बहादुरको शायद ऐसा ही बर्ताव करना चाहिए!

औरंग०—सभाजी अगर कल्मा पढ़ने पर राजी हो जाता तो मैं उसको माफ कर देता।

दिलेर०—अगर सभाजी इस वक्त मौतके डरसे कल्मा पढने पर राजी हो जाते तो मै उनसे नफरत करता।—जनाब! आप क्या यह चाहते हैं कि कोई अपनी समझ और यकीनके खिलाफ दीनइसलामको माने?

औरंग०—दिलेरखाँ, इस दीन-इसलामको फैलानेके लिए ही मैं इस तख्त पर बैठा हूँ। इसीके लिए बापको कैदखानेमें बंद किया, भाईका खून अपने सिर लिया। खुदा जानता है।

दिलेर०—यह मैं जानता हूँ जनाब! मैं आपको मजहबके बारेमे कट्टर मुसलमान समझकर ही अबतक आपका साथ दे रहा हूँ। अगर आपको मजहबकी आड़मे मनमानी करनेवाला मक्कार समझता तो अबसे बहुत दिन पहले बन्दा बन्दगी करके चल देता।—लेकिन बादशाह सलामत, कहीं सीनेजोरीसे मजहब बढ सकता है? तरवारकी वारसे दीन पर यकीन दिलाया जा सकता है? ठोकरें मारकर रिआया माफिक की जा सकती है? जहाँपनाह! मै फिर कहता हूँ—इस रास्तेसे लौटिए। अब भी हिन्दुओंकी मुखालफत छोड़िए। हिन्दू और मुसलमानोंके दिल मिले। मन्दिरो और मसजिदोंमें आजादीके साथ लोग परमेश्वर और खुदाका नाम ले। एकसाथ आसमानमें अजाँ और शखकी आवाज गूँज उठे। हिन्दू और मुसलमान एक दफा कौमी दुश्मनी भूलकर—एक दूसरेको भाई समझकर—गले लग जावे। उसी दिन हिन्दोस्तानमें एक छोरसे दूसरे छोरतक ऐसी एक बादशाहत कायम हो जायगी जैसी दुनियाभरमें कभी किसीने नहीं देखी।

औरंग०—हिन्दू और मुसलमान एक होंगे दिलेरखॉ?

दिलेर०—क्यों न होंगे हुजूर? वे इतने दिनोंसे एक ही आसमानके नीचे रहते हैं, एक ही जमीनसे पैदा हुआ नाज वगैरह खाते हैं, एक ही जमीनका पानी पीते हैं, एक ही हवा उनके वदनमें लगती है।—अब भी क्या दोनोंके प्राण–दोनोकी रूह–एक नहीं हुई? मै चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मजहब कौम और रस्म-रवाजके फर्कको भूलकर, घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, एतकाद और भक्तिके साथ, इस हिन्दोस्तानकी हरीभरी धरतीकी जयजयकारसे आसमानको गुंजा देवे!—उनके दिलोंमें यह ख्याल पैदा हो कि यह हिन्दोस्तान हमारी मा है, और हम हिन्दू-मुसलमान एक माके दो लडके—भाईभाई—है!

औरग०—दिलेरखॉ! तुम सपना देख रहे हो।

दिलेर०—मुझे माफ करे जहॉपनाह!—शायद मैं सपना ही देख रहा था। लेकिन वडे सुखका सपना था।—

औरग०—(स्वगत) यही अगर होता। यही अगर हो सकता।—नहीं, वहुत ज्यादह देर हो गई। अव इस उम्रमे एक और नये मनसूवेको लेकर कामके मैदानमें उतरना नहीं वन सकता। (प्रकट) दिलेरखॉ, मै क्या कर रहा हूँ, सो खुद मेरी ही समझमे नहीं आता। मैं 'कल' की तरह काम किये चला जा रहा हूँ। सोचने नहीं पाता। मेरी ऑखोंके आगे जैसे अँधेरा छाया हुआ है। सिर चकरा रहा है। दिलेरखॉ! अव मैं वह औरगजेव नही रहा। मैं उसका सिर्फ ढॉचा हूँ।

दिलेर०—अभी कुछ देर है जनाव! अभी उस ढॉचे पर गोश्त लटक रहा है, गिर नहीं पड़ा। पर हॉ, वैसा होनेमे वहुत देर भी नहीं है।

(इसी समय कावलेसखॉ एक चॉदीकी तश्तरीमे सभाजीका कटा हुआ सिर लाकर वादशाहके पैरोंके पास रखता है। साथमे रुधिरसे तर आजिम और सिपाही होते है।)

औरंग०—सभाजीका सिर है!—जाओ, ले जाओ ।

दिलेर०—दाराके खूनसे जो सल्तनत शुरू हुई थी वह इस बहादुरके खूनसे खतम हुई समझो ! (प्रस्थान ।)

कावलेस०—जहाँपनाह ! मेरा इनाम ?

औरंग०—तेरा इनाम ? अरे कौन—(पहरेदारोंसे) इसे बाँधो ।

कावलेस०—ऐं—मुझे—

(पहरेदार सिपाही कावलेसखाँको बाँधते हैं ।)

औरंग०—आजिम ! इसे बाहर ले जाओ—इसका सिर काटकर ले आओ ।—कावलेसखाँ ! यह जरूर है कि हम लोगोंको अक्सर तुझ ऐसे दगाबाजोंकी मदद लेनेके लिए लाचार होना पड़ता है । लेकिन दिलसे मैं तुझ ऐसे लोगोंसे नफरत ही रखता हूँ—जा, जहाँ तेरा मालिक सभाजी गया है ।

कावलेस०—जी जहाँपनाह !

औरंग—जाओ, ले जाओ । (प्रस्थान ।)

आजिम—चल कुत्ते !

कावलेस०—दोहाई है शाहजादा साहब ! मुझे जानसे न मारिए । मैं आपका गुलाम होकर रहूँगा—आपका—

आजिम—चल नमकहराम—(लात मारना)

कावलेस०—मारिए—जूते मारिए—लातें मारिए—और फिर मारकर निकाल दीजिए—जानसे न मारिए—दोहाई है !

पाँचवाँ दृश्य ।



स्थान-जोधपुरका महल ।

समय—रात्रि ।

[अजितसिंह और श्यामसिंह ।]

श्याम०—तो महाराजने रानाकी भतीजीसे व्याह किया है ?

अजित०—हाँ राजा साहब ! सेनापति दुर्गादास हालमें उदयपुर गये थे । वही वहाँसे इस व्याहका प्रस्ताव लेकर आये । मैंने उसे स्वीकार कर लिया ।

श्याम०—महाराज ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज फिरसे मेवाड और मारवाड़के घराने मिल गये । मैंने सुना है, गजसिंहकी लडकी भी बड़ी सुन्दर है ।

अजित०—लेकिन कठपुतली है । उसकी अवस्था बहुत ही कम है ।

श्याम०—इस काठकी पुतली पर ही एक दिन खून-माँस चढ आवेगा । उसे कुछ सिखाना या समझाना न होगा महाराज !

अजित०—वह बात करना भी नहीं जानती ।

श्याम०—जानेगी ! महाराज समयपर सब सीख जायगी ! औरतें तोतेकी तरह होती हैं—सीताराम पढ़ाइए, उसे भी पढ़ेंगी; राधाकृष्ण पढाइए उसे भी पढ़ेंगी ।—महाराज ! मैंने सुना है कि राना जयसिंहने अपनी छोटी रानीको छोड दिया । क्या यह सच है ?

अजित०—हाँ राजासाहब ! उन्होंने छोटी रानीका महीना कर दिया है ।

[दुर्गादासका प्रवेश ।]

श्याम०—क्यों दुर्गादास ! शाहजादी कहाँ है ?

दुर्गा०—मैंने उसे सेनापति शुजायतखाँको सौंप दिया । आपको सौंपनेकी अपेक्षा उन्हें सौंपना ही मैंने अच्छा समझा ।

श्याम०—क्या ! मुझपर आपको विश्वास नहीं हुआ ?

दुर्गा०—महाराज ! सच तो यही है कि मै आप पर पूरी तौरसे विश्वास नहीं कर सका। किन्तु बात एक ही है । बादशाहके पास शाहजादीको आप न ले गये, शुजायतखाँ ही ले गये।

श्याम०—हाँ—हाँ—सो अच्छा ही किया। शाहजादीको वे ले गये तो भी वही बात हुई, और मै ले जाता तो भी वही बात होती ।

अजित०—शाहजादी ! कौन शाहजादी दुर्गादास ?

दुर्गा०—अकबरशाहकी लडकी रजिया। उसके बदलेमें मैंने मारवाड़-राज्यके लिए बादशाहसे युद्ध किये विना ही तीन नगर प्राप्त किये हैं।

अजित०—क्या दुर्गादास ! तुम क्या यह कहना चाहते हो दुर्गादास कि तुमने मेरी—तुमने रजियाको मुगलोंके हाथ लौटा दिया ?

दुर्गा०—हाँ महाराज ! उसे मैंने लौटा दिया ।

अजित०—(दमभर चुप रहकर) रजियाको लौटा देनेका तुम्हें अधिकार क्या था सेनापति ? राजा मैं हूँ ! मेरी आज्ञा लिये विना—

श्याम०—मैंने भी सेनापतिसे यही कहा था महाराज, कि महाराजकी अनुमति लिये विना—

अजित०—तो बीकानेर-नरेश, तुम भी इस कुचक्रमें हो ?

दुर्गा०—आज्ञा मैंने इसलिए नहीं ली महाराज कि आज्ञा माँगनेसे मिलती नहीं ।—और अकबर और उनके परिवारने मेरा आश्रय लिया था; महाराजका आश्रय नहीं लिया था।

अजित०—तुम्हारी इतनी मजाल दुर्गादास !—तुमने सोचा —(क्रोधके मारे गला रुँध जाता है।)

दुर्गा०—सुनिए महाराज ! स्पष्ट ही कहता हूँ ! मुझे मालूम हुआ कि आप शाहजादीको चाहने लगे हैं। जिस दिन मैं दक्खिनसे लौट—

पाँचवाँ दृश्य ।



स्थान–जोधपुरका महल ।

समय—रात्रि ।

[अजितसिंह और श्यामसिंह ।]

श्याम०—तो महाराजने रानाकी भतीजीसे व्याह किया है ?

अजित०—हाँ राजा साहब ! सेनापति दुर्गादास हालमें उदयपुर गये थे । वहीं वहाँसे इस व्याहका प्रस्ताव लेकर आये । मैंने उसे स्वीकार कर लिया ।

श्याम०—महाराज ! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज फिरसे मेवाड़ और मारवाड़के घराने मिल गये । मैंने सुना है, गजसिंहकी लड़की भी बड़ी सुन्दर है ।

अजित०—लेकिन कठपुतली है । उसकी अवस्था बहुत ही कम है ।

श्याम०—इस काठकी पुतली पर ही एक दिन खून-माँस चढ आवेगा । उसे कुछ सिखाना या समझाना न होगा महाराज !

अजित०—वह बात करना भी नहीं जानती ।

श्याम०—जानेगी ! महाराज समयपर सब सीख जायगी ! औरतें तोतेकी तरह होती हैं—सीताराम पढ़ाइए, उसे भी पढेगी; राधाकृष्ण पढ़ाइए उसे भी पढेगी ।—महाराज ! मैंने सुना है कि राना जयसिंहने अपनी छोटी रानीको छोड दिया । क्या यह सच है ?

अजित०—हाँ राजासाहब ! उन्होंने छोटी रानीका महीना कर दिया है ।

[दुर्गादासका प्रवेश ।]

श्याम०—क्यों दुर्गादास ! शाहजादी कहाँ है ?

दुर्गा०—मैंने उसे सेनापति शुजायतखाँको सौंप दिया । आपको सौंपनेकी अपेक्षा उन्हें सौंपना ही मैंने अच्छा समझा ।

श्याम०—क्या ! मुझपर आपको विश्वास नहीं हुआ ?

दुर्गा०—महाराज ! सच तो यही है कि मै आप पर पूरी तौरसे विश्वास नहीं कर सका । किन्तु बात एक ही है । बादशाहके पास शाहजादीको आप न ले गये, शुजायतखाँ ही ले गये ।

श्याम०—हाँ—हाँ—सो अच्छा ही किया। शाहजादीको वे ले गये तो भी वही बात हुई, और मै ले जाता तो भी वही बात होती ।

अजित०—शाहजादी ! कौन शाहजादी दुर्गादास ?

दुर्गा०—अकबरशाहकी लड़की रजिया । उसके बदलेमे मैंने मारवाड़-राज्यके लिए बादशाहसे युद्ध किये बिना ही तीन नगर प्राप्त किये है ।

अजित०—क्या दुर्गादास ! तुम क्या यह कहना चाहते हो दुर्गा-दास कि तुमने मेरी—तुमने रजियाको मुगलोंके हाथ लौटा दिया ?

दुर्गा०—हाँ महाराज ! उसे मैंने लौटा दिया ।

अजित०—(दमभर चुप रहकर) रजियाको लौटा देनेका तुम्हें अधिकार क्या था सेनापति ? राजा मै हूँ ! मेरी आज्ञा लिये बिना—

श्याम०—मैंने भी सेनापतिसे यही कहा था महाराज, कि महा-राजकी अनुमति लिये बिना—

अजित०—तो बीकानेर-नरेश, तुम भी इस कुचक्रमें हो ?

दुर्गा०—आज्ञा मैंने इसलिए नहीं ली महाराज कि आज्ञा माँगनेसे मिलती नहीं ।—और अकबर और उनके परिवारने मेरा आश्रय लिया था; महाराजका आश्रय नहीं लिया था।

अजित०—तुम्हारी इतनी मजाल दुर्गादास !—तुमने सोचा —(क्रोधके मारे गला रुँध जाता है ।)

दुर्गा०—सुनिए महाराज ! स्पष्ट ही कहता हूँ ! मुझे मालूम हुआ कि आप शाहजादीको चाहने लगे है । जिस दिन मै दक्खिनसे लौट-

कर यहाँ आया था उसी दिन मुकुन्ददासने यह बात मुझसे कही थी। उसके बाद मैंने खुद भी देखा कि यह बात सच है। यह प्रेम किसीके लिए अच्छा न था। क्यों कि आपका शाहजादीके साथ व्याह हो नहीं सकता। इसीसे मैंने उदयपुरमें आपके व्याहका प्रस्ताव किया। वहीं इन बीकानेर-नरेशने शाहजादीको लौटा देनेका प्रस्ताव किया। मैं उस पर राजी हो गया।

अजित०—राजी हो गये! जान पड़ता है, खूब रिश्वत ली है सेनापति!—

दुर्गा०—रिश्वत महाराज! अगर रिश्वत लेता—नही, क्षमा कीजिएगा महाराज! मैं अनुचित बात कहनेवाला था।

अजित०—क्षमा!—दुर्गादास! इस रिश्वत लेनेके अपराधके कारण मैं तुमको सदाके लिए मारवाडसे निकल जानेकी आज्ञा देता हूँ।

दुर्गा०—जो आज्ञा महाराज! प्रणाम। (प्रस्थान।)

अजित०—षड्यन्त्र—षड्यन्त्र—एक भारी षड्यन्त्र रचा गया है!

श्याम०—महाराज, पहले ही कह चुका हूँ कि मैं इस षड्यन्त्रमे—इस साजिशमें—नहीं हूँ!

अजित०—दूर हो!—(लात मारकर श्यामसिंहको निकाल देते हैं) —रजिया! तो तुम गई! सदाके लिए मेरे हाथसे गई! और तुम्हारे लिए मैंने दुर्गादासको भी हाथसे खोया!

(बेचैनीके साथ टहलना।)

[तेजीके साथ कासिमका प्रवेश।]

कासिम—राजा! महाराज दुर्गादास कहाँ है?

अजित०—वे इस राज्यको छोडकर चले गये।

कासिम—वे खुद चले गये, या तुमने उनको निकाल दिया—श्यामसिंहसे जो मैंने सुना वह सच है?

अजित०—हाँ, मैने उनको देशनिकालेका दण्ड दिया है।

कासिम—यह तो मालूम हुआ ! लेकिन क्यों ?

अजित०—रिश्वत—घूस लेनेके लिए ।

कासिम—(क्रोधसे काँपते हुए स्वरमें) घूस ! रिश्वत !—महाराज दुर्गादासने घूस ली है !—भलारे भला ! तूने यह बात तो कही ! दुर्गादासने घूस ली है ! दुर्गादास अगर घूस लेते तो क्या तेरे ऐसे एक महाराज न बन जाते ? वे चाहते तो तुझे पैरोंसे ठेलकर जोधपुरके सिंहासन पर राजा होकर न बैठ सकते थे ? दुर्गादास घूस लेंगे ? हो रे नमकहराम !—एहसानफरामोश ! जिसने अपना जी होमकर इतने दिन तक तेरी हिफाजत की—तेरी जान बचाई—पचीस बरसतक जो मुल्कके लिए लडता रहा, उसीको बुढापेमें तूने निकाल दिया ! अब वह पराये दरवाजे पर भीख माँगकर—नौकरी करके—खायँगे, यही तेरा धरम था राजा ?

अजित०—काका—

कासिम—खबरदार ! अब मुझे काका कहकर न पुकारना। मैं ऐसे एहसानफरामोशका काका बनना नहीं चाहता !—मैं अब तेरी दी रोटी खाना नहीं चाहता । मैं भी जाऊँगा । मेहनत-मजूरी करके खाऊँगा । भीख माँगकर अपने महाराज दुर्गादासको खिलाऊँगा। उनकी कदर तू क्या जानेगा एहसानफरामोश ! (प्रस्थान ।)

(अजितका चुपचाप दूसरी तरफसे प्रस्थान ।)

छठा दृश्य।

स्थान—औरंगाबाद। शाहीमहल। दो-मंजिला।

समय—तीसरा प्रहर।

[गुलनार अकेली खड़ी है। सामने बादशाहका नौकर है।]

गुलनार—क्या बादशाहने कहा कि फुर्सत नहीं है?

नौकर—हाँ बेगमसाहब! बादशाह सलामत मक्केशरीफ जानेकी तैयारी कर रहे हैं। यहाँ आनेकी उन्हें फुर्सत नहीं है।

गुलनार—अच्छा जाओ। (नौकरका प्रस्थान।) यहाँतक! मैंने बादशाहसे कहा मेरे लड़केको बीजापुर न भेजिए। जवाब आया, उसे जाना ही होगा! बादशाहको बुला भेजा। जवाब मिला, फुर्सत नहीं है! हूँ! इन्सानकी जब तनज्जुली होती है तब ऐसा ही होता है! वक्तने पलटा खाया है। लेकिन आज मैंने यह बात चुपचाप सुन ली! तअज्जुब! मैं क्या वही गुलनार हूँ? यकीन नहीं आता। देखूँ (आईनेके पास जाकर) यह क्या! सचमुच मैं अब वह गुलनार नहीं रही। आँखें गढ़ेमें चली गई हैं, गाल बैठ गये हैं, बाल पक गये हैं। अब मैं वह गुलनार नहीं हूँ!—मैं कौन हूँ? (चिल्लाकर) मैं कौन हूँ?

[रजियाका प्रवेश।]

रजिया—बेगम साहब!

गुलनार—कौन? रजिया! क्या कहकर पुकारा? बेगम साहब? तो मैं बादशाहकी बेगम हूँ! तो मैं वही गुलनार हूँ!

रजिया—अम्मीजान—

गुलनार—रजिया! मुझे अच्छी तरह देख और सचसच कह—मैं गुलनार हूँ कि नहीं?

रजिया—अम्मीजान! मालूम नहीं, तुम वही गुलनार हो या नहीं। लेकिन तुम मेरी वही अम्मीजान जरूर हो।

गुलनार—तू सच कहती है रजिया? मैं पहचान पड़ती हूँ? सच कह, पहचान पडती हूँ? वह एक दिन था, जब तूने मुझे हिन्दोस्तानके बादशाहकी बेगम गुलनार देखा था—हिन्दोस्तानका बादशाह जिसकी एक प्यारकी नजरके लिए मुन्तजिर रहता था; सैकड़ो राजे जिसकी त्यौरी पर बल पडनेको खौफके साथ दूरसे देखा करते थे, हाथमें नंगी तरवार लिये लाखों सिपाही जिसकी उँगलीके इशारे पर मरने मारनेके लिए तैयार रहते थे। और आज मै किस हालतमे हूँ!—बादशाह नफरतकी निगाहसे देखते है, फर्मावरदार लोग बात करनेके रवादार नहीं हैं, सारी दुनियाने छोड़ दिया है। क्या मै वही गुलनार हूँ? अच्छी तरह देखकर बतला।

रजिया—अम्मीजान! तुम मेरी वही अम्मीजान हो। दुनिया तुमको छोड़ दे, लेकिन मै तुमको नहीं छोड सकती।

गुलनार—क्यों रजिया? मैंने तेरे साथ कब क्या सलूक किया है?

रजिया—तुमने कुछ सलूक नहीं किया, यह सच है। लेकिन तो भी मैं तुमको नहीं छोड़ सकती। क्योंकि हम दोनों एक ही तरहके दुखसे दुखी हैं। मैं भी बदनसीब हूँ—मै भी एक आदमीकी चाहमें फँस चुकी हूँ।

गुलनार—तूने किसे चाहा था? किसे रजीया? लेकिन क्या मेरी तरह चाहा था? मेरी तरह इश्ककी तेज भूसीकी आगमे जल चुकी है? एक सल्तनत उसके लिए अपने हाथसे गवाँ दी है? और फिर उनसे कोरा जवाब पाया है?—नहीं रजिया! तू इस जलनका शुमार भी नहीं कर सकती!—उसी दिनसे मेरा सब हुस्न और

घमंड मिट गया है। आज जिसे तू देख रही है वह गुलनार नहीं है; उसका ढाँचा है। अब मैं वह गुलनार नहीं हूँ।

[बाँदीका प्रवेश।]

बाँदी—शाहजादी! चलिए!

रजिया—ठहर जा, थोड़ी देरमें चलती हूँ।

बाँदी—नहीं शाहजादी! बादशाहका हुक्म नहीं है।

गुलनार—क्या हुक्म नहीं है बाँदी?

बाँदी—शाहजादीको यहाँ आने देनेका। (रजियासे) चलिए।

(रजिया आँखोंमें आसूँ भरे हुए गुलनारकी तरफ देखती है।)

गुलनार—(रजियासे) जाओ!—(रजियाका प्रस्थान।) मैं आज इतनी नाचीज हो गई हूँ! अपनी पोतीसे बात करना भी मेरे लिए मना है! एक बाँदी भी लालपीली आँखें दिखाकर चली जाती है। नौकर-चाकरोंकी भी नफरत बर्दाश्त करके गुलनार इस शाहीमहलके कोनेमें नहीं पड़ी रह सकती! मल्का होकर शाहीमहलमें आई थी और उसी हैसियतमें यहाँसे जाऊँगी।

[नीचे सड़कपर कुछ फकीर आकर गाते हैं।]

गीत।

जिन्दगी तो देख ली हसरतकी कसरत है अजब।
गर हो हिम्मत कुछ तो चल तू मौतको भी देख अब॥
यह भरा लहरा रहा गहरा समुद्र अपार है।
तैरते हैं सब पडे उसमें, मगर है खुश्क लब॥
हाथ पैर हजार मारें, पार पर मिलना नहीं।
डूबना मझधारमें होगा, थकेंगे अंग जब॥
इसके ऊपर उठ रहीं लहरें गरजतीं वेगसे।
और नीचे है अगम पानी परेशानी अजब॥
इतने दिन तेरा किया लहरोंमें ऊपर तू अरे।
देख नीचे डूबकर कितना कहाँ पानी है अब॥

गुलनार—ठीक है । आज गोता लगाकर देखूं नीचे कितना गहरा पानी है । वस, यही ठीक है । डर काहेका? यही अच्छा है । आज खुदकुशी करूँगी!

[कामवख्शका प्रवेश ।]

कामवख्श—अम्मी! मैं बीजापूर जाता हूँ । अव्वाजानका हुक्म है ।

गुलनार—हाँ सुना है । तुम्हारे अव्वाजानका हुक्म है । मै रोकनेवाली कौन हूँ! जाओ । (कामवख्श गुलनारके पैर छूता है । गुलनार सिर्फ सिर झुका लेती है) कामवख्श! वेटा! वस यही मेरी तेरी आखिरी मुलाकात है!

कामवख्श—क्यों अम्मीजान?

गुलनार—क्यों? इस लिए कि मैं मरूँगी—मैं मरूँगी—मैं खुदकुशी करूँगी!

कामवख्श—यह क्या कह रही हो अम्मीजान! मैं जानता हूँ कि तुम्हारी तवियत कुछ दिनसे वहुत खराव हो रही है । लेकिन—

गुलनार—क्यों मरूँगी? जानना चाहते हो? तो सुनो । जवतक मैं वादशाहकी प्यारी वेगम थी—तवतक जिन्दा रही! जवतक मैं हुकूमत करती रही—जिन्दा रही! जवतक शानके साथ सिर ऊँचा किये रह सकी—जिन्दा रही!—आज वादशाहकी नफरत, नौकरोंकी वदमिजाजी, लड़के-पोतोंका तरस और दिलकी वेकरारी लेकर गुलनार इस दुनियामें रहना नहीं चाहती ।

काम०—फिर वह दिन अल्लाह दिखावेगा । अम्मीजान, अव्वाजानसे माफी माँग लो ।

गुलनार—क्या कामवख्श? माफी! मैं माफी माँगूंगी?—तू मेरा लड़का है?—कामवख्श! सूरज जिस शानसे निकलता है उसी शानसे डूवता है ।—जाओ—लेकिन लौटकर अपनी अम्मीको न देखोगे ।

काम०—अम्मीजान—

गुलनार—चुप! बस अब कुछ न कहना। मैंने पक्का इरादा कर लिया है! जाओ, बस हम दोनोंकी यही आखिरी मुलाकात है।—(सिर झुकाकर धीरे धीरे कामबख्शका प्रस्थान।) सूरज डूबनेमे अब ज्यादह देर नहीं है। बाँदी!—नहीं, कोई नहीं है। एक बाँदी भी आज मेरे हुक्मके इन्तिजारमें यहाँ मौजूद नहीं है! आज मैं बाँदियोंसे भी बदतर हो गई हूँ!—गया, सब गया—मेरी शान, इज्जत और दबदबा सब गया। मैं भी जाती हूँ।

(प्रस्थान।)

[दमभरमे एक बाँदीके साथ औरंगजेबका प्रवेश।]

औरंग०—कहाँ है बेगम?

बाँदी—मालूम नहीं जहाँपनाह! यहीं पर तो अभी थीं। जान पडता है, भीतर गई।

औरंग०—जा खबर दे। (बाँदीका प्रस्थान।) दुर्गादास! मै तुमसे जंगमे हार चुका हूँ, लेकिन यह हार उससे कहीं बढकर है। तुमने गुलनार ऐसी हसीन औरतको मुट्ठीमें पाकर भी छोड़ दिया—गुलनार ऐसी मल्काकी मोहब्बतका दम भरनेसे साफ इनकार कर दिया। बेशक तुम एक महात्मा हो! दिलेरखाँके कहनेसे और तुम्हारी इज्जत करनेके खयालसे, आज मैं गुलनारको माफ कर दूँगा। सच बात है, दिलेरखाँका कहना ठीक है—मक्केशरीफको जानेके वक्त एक बिगड़ेदिल ढीठ औरत पर गुस्सा रखना मुनासिब नहीं।

[खूब शृंगार किये हुए गुलनारका प्रवेश।]

गुलनार—कौन? क्या, बादशाह? इतनी मेहर्बानी!

औरंग०—मल्का!

गुलनार—चुप । अब मैं मल्का या बेगम नहीं रही । जब तक हुक्म चलाती रही, तब तक मल्का थी । अब आज मै मल्का नहीं हूँ । मैं सिर्फ गुलनार हूँ ।—क्या कहना है, कहो ।

औरंग०—यह क्या गुलनार ! इसी बीचमें इतनी तबदीली ! यह क्या ! तुम तो पहचान नहीं पड़तीं !

गुलनार—बादशाह ! मेरे उरूजके साथ मेरा हुस्न भी चला गया —मिट्टीमें मिल गया । अब मेरे पास किस इरादेसे आये हो? बोलो । ज्यादह वक्त नहीं है । मैं मरने जा रही हूँ । मैं जहरका प्याला पी चुकी हूँ !

औरंग०—यह क्या ! जहर पी लिया है गुलनार ? किस लिए ?

गुलनार—किस लिए ? पूछते हो? बुड्ढे लटे हुए औरंगजेब ! तुम क्या समझे थे कि मैं हेच होकर तुम्हारी नफरतको बर्दाश्त करनेके लिए जिन्दा रहूँगी ? तुमने क्या सोचा था कि मैं तुमसे रहमकी भीख माँगकर जिन्दा रहूँगी ?—इस सूरजकी तरफ देखो, उसके बाद मेरी तरफ देखो, फिर बतलाओ कि हम दोनों भाई-बहन जान पड़ते है या नहीं ? मैं भी मल्का होकर आसमान पर चढी थी, और आज गुरूब होने जा रही हूँ ।

औरंग०—गुलनार ! मैं इस वक्त तुमको माफ करनेके लिए आया हूँ । मैंने तुमसे जो कुछ ले लिया था वह फिर देने आया हूं ।

गुलनार—माफी !

औरंग०—हाँ, अब मै तुमको प्यार नहीं कर सकता गुलनार ! गुलनार ! तुम नहीं जानतीं कि तुमने मुझको कैसी चोट पहुँचाई है ! दमभरमें तुमने मेरी मोहब्बत, एतबार और उम्मीदोंको बेदर्दीके साथ टुकडे टुकडे कर डाला है । जवानीमें इन चीजोंके टूटने पर जोड लग

सकता है। लेकिन बुढ़ापेमें जो टूटता है वह फिर जुड़ नहीं सकता। मेरा सब मिट गया। मैं भी मरने जा रहा हूँ। इस वक्त मैं तुमसे मोहब्बत नहीं कर सकता। वह ताकत मुझमे नहीं रही। लेकिन हाँ, माफ कर सकता हूँ।

गुलनार—माफ—बादशाह! तुम मुझे माफ करोगे?

औरंग०—नीच-कौम लोग बदमाश औरतको मारते-पीटते हैं, या मार ही डालते हैं। मामूली पढ़े-लिखे लोग उसे छोड़ देते हैं। बड़े लोग—ऊँचे दर्जेके आदमी उसे माफ कर देते है।

गुलनार—(व्यंग्यके स्वरमें) बेशक तुम बहुत ही ऊँचे दर्जेके आदमी हो! लेकिन बादशाह! गुलनारने न कभी किसीको माफ किया, और न वह किसीसे माफी चाहती है!

औरंग०—तुम गलत समझी हो गुलनार! मैं ऊँचे दर्जेका आदमी नहीं हूँ! ऊँचे दर्जेका आदमी दिलेरखाँ है। मै तो इस वक्त 'कल'की तरह सब काम कर रहा हूँ। दिलेरखाँने मुझसे तुमको माफ कर देनेके लिए कहा है। इसीसे मै उसका कहना—

गुलनार—दिलेरखाँके कहनेसे! जाओ बादशाह! तुम्हारी माफी मैं नहीं चाहती। मै दोजखकी आगमें जलने जा रही हूँ और साथ ही उस दुर्गादासकी बेहद बेशुमार चाह लिए जा रही हूँ। अगर उसे पाती, तो मैं उसको, बादलके टुकड़ेकी तरह, अपनी चाहतकी आँधीसे घेरकर, खींचकर, अपने साथ ले जाती—उसको भूसीकी आगकी तरह ख्वाहिशकी आगमें धीरे धीरे जलाती। वह मिला नहीं। लेकिन शायद एक दिन कहीं मिलेगा। तब उसे देख लूँगी। औरंगजेब! दुनियामें कुछ लोग ऐसे भी है जिनकी चाहत कीनेकी

—इन्तिकामकी तरह जबरदस्त, तेज, आगसे भरी होती है।

मै वैसी ही औरत हूँ।—मेरा सिर घूम रहा है, अब बोला नहीं जाता, मैं मरती हूँ। मुझे कुछ दुख नहीं है औरंगजेब! मुझे अपने गिरनेका दुख नहीं है। ऊपर चढी थी—गिर पड़ी। जो लोग पड़े रहते है, वे गिर नहीं सकते। कुछ गम नहीं। अगर औरत होकर पैदा हुई थी तो मर्दको अपनी मुट्ठीमें रक्खा। अगर मल्का हुई थी तो सल्तनत पर हुकूमत की। अगर किसीको चाहा भी, तो उसे ही अपनी उल्फत बख्शी। उससे मोहब्बतकी भीख नहीं माँगी।—कुछ गम नहीं। एक दिन तो मरना होगा। फिर हाथ-पैर चलते ही क्यो न मर जाऊँ—वह सूरज डूब गया—मैं भी जाती हूँ।

(गिर पडती है ।)

औरंग०—जाओ गुलनार! अपने गुनाहो पर पछताते हुए तुम नहीं मरीं। शायद मौतके उस किनारे पहुँचने पर तुम्हारा पछताना शुरू होगा। लेकिन मैं तो मरनेसे पहले ही अपने आमालों पर पछताने लगा हूँ।

सातवाँ दृश्य।

स्थान—आगरेका महल। नीचे यमुना बह रही है।

समय—सायकाल।

[दिलेरखाँ और एक बादशाही नौकर।]

नौकर—बादशाहकी मौत हो गई।

दिलेर०—हाँ मुबारक! वह मौत बहुत ही दर्दनाक थी। देखकर तरस आता था। उनके पास न कोई शाहजादा था—बेगम भी न थीं।—अकेला मैं था। बडी ही दर्दनाक मौत थी।

नौकर—वे मक्केशरीफ जानेवाले थे न?

दिलेर०—हाँ। लेकिन जा नहीं सके। दौलताबादमे ही मर गये। अफसोस करनेलायक उस मौतको मै कभी न भूलूँगा। अपने आमालों पर अफसोस करते हुए बादशाहका लेटे लेटे "माफ करो मराठे, माफ करो राजपूतो, माफ करो पठानो" कहकर चिल्लाना सुननेसे जैसे छाती फटी जाती थी। उसके बाद मरनेसे दमभर पहले भर्राई हुई टूटी-फूटी आवाजमें बादशाहने कहा—"वह सामने मौतका काला दरिया लहरा रहा है, उसीमें अपनी जिन्दगीकी किश्ती छोडता हूँ।" आखिरको "हो अल्ला" कहकर चिल्ला उठे—सब खतम हो गया।

नौकर—बेशक अफसोसके लायक मौत थी।—मालूम नहीं, अब कौन बादशाह होगा।

दिलेर०—मौजम और आजिममें लड़ाई छिड गई है। नतीजा क्या होगा, सो खुदा जाने।

नौकर—आप शाहजादी रजियाको यहाँ ले आये हैं?

दिलेर०—हाँ मुबारक। आज शाहजादीके न बाप है, न मा है—कोई नहीं है। उसके बराबर दुखिया और कौन है? यहाँ उसे एक बूढी अन्नाके पास छोड़े जाता हूँ।

नौकर—आप कहाँ जायेंगे?

दिलेर०—मैं जरा दुर्गादासका पता लगाने जाऊँगा।

नौकर—क्यों?

दिलेर०—मतलब है। (दोनोंका प्रस्थान।)

[पागलोंकी तरह धीरे धीरे रजियाका प्रवेश।]

रजिया—मै उसे प्यार करती थी। इसमें क्या बेजा था? किसने हमको जुदा कर दिया? क्यों ऐसा किया?—हमारा सुख वे देख न सके।

बाँदी---शाहजादी---[बाँदीका प्रवेश ।]

रजिया---(अनसुनी करके) उस दिन पहले पहल आबू-पहाड़के गढ़में, छिटक रही चाँदनीमे, क्यों हमारी मुलाकात हुई---क्यों हमारी मुलाकात हुई अजित !

बाँदी---फिर बुदबुदाने लगीं । शाहजादी ! ओ शाहजादी !

रजिया---अजित ! अजित !---उसका नाम भी मीठा है ! अजित !

बाँदी---शाहजादियोंके ढग ही निराले होते है । मैं जाती हूँ । वह इस घड़ी बोलेगी ही नहीं । (प्रस्थान ।)

रजिया---शाम हो गई । ठंडी हवा चल रही है । कोयल बोल रही है । जमना महलके नीचेसे वही चली जा रही है । आसमान कैसा साफ, कैसा नीला है ! (गाती है)---

गीत ।

रही न सुखकी बहार ही जब तो फिर ये बुलबुल है गारही क्यों ?
हवा भी ठंडी ये खुशबू लेकर जला रही मुझको आरही क्यों ?
जो तान थी गूँजती जहाँमें वो आज चुप हो रुला रही क्यों ?
न आँखमें रोशनी न जाँ है, ऐ मौत, मुझको जिला रही क्यों ?

आठवाँ दृश्य ।



स्थान---पेशोला झीलके किनारेका राजमहल ।

समय---दोपहर ।

[दुर्गादास अकेले खड़े हुए सामनेका दृश्य देख रहे हैं ।]

दुर्गा०---(स्वगत) सब चेष्टा व्यर्थ हुई । इस जातिको खींचकर खड़ा नहीं कर सका। यह जरूर है कि मुगलोंका साम्राज्य नहीं रहेगा, लेकिन यह जाति भी उठकर खड़ी नहीं होगी ।

सर०—भीतर चलिए देव ! जलपान करिए । दोपहर ढल चुकी है ।

दुर्गा०—चलता हूँ । चलिए महारानी !

जय०—यहाँ आपको किसी तरहका कष्ट तो नहीं है ?

दुर्गा०—कष्ट ? रानासाहबके यहाँ मैं बड़े सुखमें हूँ ।

जय०—मेरे यहाँ न कहिए । सरस्वतीके यहाँ कहिए । सरस्वतीने ही आपके लिए यह जगह पसन्द कर दी है । सरस्वतीने ही यह शीशमहल आपके लिए बनवाया है । जिस दिन आपने हमारे यहाँ पधारकर एक निर्जन स्थानमें रहनेकी इच्छा प्रकट की थी, उसी दिन सरस्वती खुद यहाँ आकर सब बन्दोबस्त कर गई है । यहाँ नित्य वह अपने हाथसे आपके लिए रसोई बनाती है ।

दुर्गा०—महारानीकी मुझ पर असीम कृपा है !

सर०—कृपा ? कृपा न कहिए ! देव ! यह दीनका अर्घ्य है—भक्तका नैवेद्य है । राजस्थानमें ऐसा कौन है, राठौर वीर दुर्गादासके नामको सुनकर जिसकी छाती फूल न जाती हो, गर्वसे सिर ऊँचा न हो जाता हो ? सौभाग्यसे, पूर्वजन्मके पुण्योंसे ऐसा देशभक्त देवता हमको अतिथिके रूपमें प्राप्त हुआ है । हम उसकी पूजा करके क्यों न अपनेको धन्य बनावें !

[दरवानका प्रवेश ।]

दरवान—महाराज ! दरवाजे पर मुगल-सेनापति दिलेरखाँ खड़े है । वे राठौरसेनापतिसे मिलना चाहते हैं ।

दुर्गा०—दिलेरखाँ ! यह क्या ! दिलेरखाँ ?

दरवान—हाँ सरकार, यही नाम तो बतलाया है ।

दुर्गा०—जाओ, उन्हे बड़े आदरके साथ ले आओ।(सरस्वतीसे) रानी साहब, अब तुम भीतर जाओ। मैं रानासाहबके साथ अभी आता हूँ। (सरस्वतीका प्रस्थान।) दिलेरखाँ यहाँ! मतलब क्या है?

जय०—कुछ समझमे नही आता।

[दिलेरखाँका प्रवेश।]

दिलेर०—बंदगी बहादुर दोस्त दुर्गादास! मुझे पहचाना?

दुर्गा०—मैं अपने जीवनदाताको किस तरह भूल सकता हूँ? आइए! आज मैं अपनेको बहुत भाग्यशाली समझ रहा हूँ। कहिए, यहाँ किस इरादेसे आना हुआ सरदार साहब?

दिलेर०—तीर्थ-दर्शन करनेके लिए दुर्गादास! तुम हिन्दू लोगोंके काशी, हरिद्वार, सेतुबन्ध-रामेश्वर वगैरह तीर्थ हैं न?—जहाँ यात्री लोग कभी कभी जाकर अपनी आकबत बनाते हैं। मै भी मरनेसे पहले एक दफा तुम्हारे दर्शन करनेके लिए आया हूँ।

दुर्गा०—(दमभर चुप रहकर) दिलेरखाँ! मै एक साधारण आदमी हू; जिन्दगीमें भरसक अपने कर्त्तव्यका पालन करता आ रहा हू।

दिलेर०—इस पापी जमानेमें इतना ही कितने आदमी करते हैं दुर्गादास? जिस जमानेमें भाई अपने भाईका गला काटनेको तैयार है, अपने थोड़ेसे फायदेके लिए लोग कौम भरको नुकसान पहुँचानेमें नहीं हिचकते—जिस जमानेमें खुशामद, जुल्म, झूठ, फरेब चारों तरफ छाया हुआ है, उस जमानेमें तुम ऐसे दिलेर, साफदिल, नेकचलन देवताको देखनेसे रूह पाक होती है। खयाल करके तुम्हीं बतलाओ दुर्गादास, तुम्हारे यहाँके पुराणोंमें ही ऐसे कितने लोगोंका बयान है —जिन्होंने मालिकके लिए अपनी जानकी पर्वा न करके मुल्कके लिए सब कुछ छोड़कर, अपनी पनाहमें आये हुएको बचानेके लिए अपना

वतन छोड़ दिया---हूरसे बढकर हसीन मल्काकी बेजा उल्फतको लात मार दी---सताई गई औरतकी जान बचानेके लिए अपनी छाती आगे कर दी---और अखीरको एक ऊँचे खानदानकी लड़कीका धरम बचानेके लिए देशनिकालेकी सजा कुबूल की ।---बतलाओ ?

दुर्गा०---पुराणोंमें ढूँढनेकी क्या जरूरत है दिलेरखाँ ! उससे भी ऊँचे दर्जेका चरित्र अगर देखना चाहो तो अपने चरित्रको ही आईना लेकर देखो ।

दिलेर०---अपने ?

दुर्गा०---हाँ दिलेरखाँ, अपने ! और भी एक आदमीसे तुमको मिलाता दिलेरखाँ । पर खेद है कि वह यहाँ नहीं है। वह तुम्हारा ही जाति-भाई वफादार कासिम है ।

[कासिमका प्रवेश ।]

कासिम---कहा ! महाराज कहाँ है ? अरे ये तो हैं ।

(जमीनपर साष्टांग प्रणाम करता है ।)

दुर्गा०---यह तो कासिम ही है! कैसे आश्चर्यकी बात है । कासिम तुम यहाँ खोजकर कैसे चले आये ?

कासिम---पता लगाते लगाते आया हूँ महाराज ! न जाने कितनी जगह जाकर आपकी तलाश की है महाराज !

दुर्गा०---कासिम, तुम महाराज किसे कह रहे हो ?

कासिम---जिसे हमेशासे महाराज कहता आ रहा हूँ ।

दुर्गा०---नहीं कासिम ! तुम्हारे और मेरे महाराज इस समय जोधपुरके महाराज अजितसिंह हैं ।

कासिम---उसका नाम न लीजिए महाराज ! वह नमकहराम---

दुर्गा०---कासिम ! याद रक्खो, तुम किसके आगे यह बात कह रहे हो ?

कासिम—जानता हूँ, मालिकके नाम पर छातीका खून बहानेवाले अपने देवताके आगे कह रहा हूँ। क्या करूँ, रहा नहीं जाता। जिसे आपने बचाकर इतना बडा किया, जिसके बचाव और राजपाटके लिए अपना सब सुख खोया, जिसका रोयाँ रोयाँ आपका एहसानमन्द होना चाहिए था—उसीने आपको बुढापेमें—(कण्ठावरोध)

जय०—कासिम ! तो दीन-इसलाम तुम ऐसे आदमी भी बनाता है ?

दुर्गा०—सभी धर्म एक ही बात कहते है, एक ही महानीतिका शिक्षा देते हैं रानासाहब ! तब भी अगर मनुष्य मनुष्यत्व न प्राप्त कर सके तो वह धर्मका दोष नहीं है। मुसलमानोंमें काबलेसखाँ भी हैं, और दिलेरखाँ और कासिम भी हैं।

दिलेर०—और हिन्दुओंमें श्यामसिंह भी है और दुर्गादास भी है।

कासिम—हुजूर, मेरी एक अर्ज है।

दुर्गा०—क्या कासिम ?

कासिम—मैंने सुना है कि आज हुजूर रानाकी रोटियाँ खा रहे हैं। यह तो नहीं हो सकता।

दुर्गा०—क्या नहीं हो सकता ?

कासिम—मेर जीतेजी हुजूर पेटके लिए दूसरेके दरवाजे पर न जायँ। मुझसे यह न देखा जायगा।

जय०—यह क्या ! तुम क्या करना चाहते हो कासिम ?

कासिम—क्या करना चाहता हूँ ? सुनो राना, मैं महाराजको खिलाऊँगा।

जय०—किस तरह ?

कासिम—जिस तरह हो सकेगा। मजूरी करके खिलाऊँगा। भीख माँगकर खिलाऊँगा।

जय०—तुम क्या पागल हुए हो कासिम! तुम पाओगे कहाँ?

कासिम—जहाँसे पाऊँगा वहाँसे खिलाऊँगा। अगर आज हमारी महारानी जीती होती तो दुर्गादासको पेटकी रोटियोंके लिए दूसरेके दरवाजे पर न जाना पड़ता। वह नहीं है, लेकिन मै हूँ। मै मजूरी करके खिलाऊँगा—चूनी भूसी जो मिलेगा, खिलाऊँगा।—

जय०—यह भी कहीं हो सकता है?

कासिम०—नहीं हो सकता? देखो महाराज दुर्गादास! तुमको जो पसन्द हो करो! पसन्द कर लो महाराज! रानाका दिया हुआ राज-भोग खाओगे? या मेरा लाया हुआ रूखा-सूखा अन्न खाओगे? पसन्द कर लो, रानाके पैरोंमें रहोगे? या मेरे सिर पर रहोगे? जो चाहो पसन्द कर लो।

दुर्गा०—ठीक कहते हो कासिम! दुर्गादास तुम्हारा लाया हुआ रूखा-सूखा अन्न ही खायगा। (उठकर कासिमको गलेसे लगाकर) भाई कासिम! आजसे हम दोनो भाई हुए। (दिलेरखाँसे) देखो दिले-रखाँ, कासिम कैसा उच्चपुरुष है!

दिलेर०—तुमने सच कहा था दुर्गादास! तुम दोनो महात्मा आज मेरे सामने खडे होओ—एक दफा जी भरकर तुम दोनोंके दर्शन कर लूँ।—खुदा! तुम्हारे स्वर्गमे जो देवता सुन पड़ते है वे क्या इनसे भी बडे है?

यवनिका पतन।